ચુકાદો

भगवान श्री रजनीश की अमृत वाणी का दिव्य प्रसाद

नवीन साहित्य

(१) जिन खोजा तिन पाइयां — मूल्य २०.००
(कुंडलिनी योग पर सूक्ष्म सहज वृहत् पुस्तक)
पृष्ठ : ६०० फोटोप्लेट्स २०

(२) ज्यों की त्यों धर दीन्हीं चदरिया — मूल्य ४.००

(३) मन के पार — मूल्य १.००

शीघ्र प्रकाश्य

(१) अंतर्वीणा

(२) ढाई आखर प्रेम का

नए संस्करण

(१) प्रेम और विवाह

(२) समाजवाद से सावधान — मूल्य ३.५०

(३) संभोग से समाधि की ओर — मूल्य ३.५०

प्राप्ति स्थल
मंत्री
श्री ईश्वरलाल एन. शाह
जीवन जागृति केन्द्र रूम नं. ५३,
एम्पायर बिल्डिंग, डा. डी. एन. रोड
बंबई : १
फोन : २६४५३०

भगवान श्री के आगामी कार्यक्रम

दिनांक	स्थान	कार्यक्रम	संयोजक
१८ जून से २४ जून तक (प्रति माह ७ दिन तक) सदस्यता शुल्क ५००) रु० प्रति सदस्य, ६ माह हेतु।	बंबई	स्टडी सरकिल में केवल १०० सदस्यों के बीच वार्त्तायें, प्रश्नोत्तर प्रवचन।	जीवन जागृति केन्द्र बंबई : १
१८ अगस्त से ४ सितंबर ७१ तक (सदस्यता शुल्क १००) प्रति सदस्य)	बंबई	महावीर–वाणी	,, ,, ,,

फूल.... और फूल.... और फूल

पागल है वह जो स्वयं को महान मानता है।

अपने से गुजरे बिना कोई परमात्मा तक नहीं पहुंच पाता, हर आदमी अपने भीतर गैर हाजिर है।

हम बैठक खाने में ही जिंदगी गुजार देते हैं, अपने तलघर में कभी नहीं जाते-जहां-हजारों साल से वह बुखार-जंगली अचेतन में रहता है।

होश से वही भर सकता है, जो दमन न करता हो।

जो आदमी निर्णय नहीं लेता वह खाली हो जाता है।

जो आदमी अकेले होने में पर्याप्त नहीं है, वह सत्य की खोज नहीं कर सकेंगे।

जो अपने व्यक्तित्व को खोता है, वह आत्मघाती है।

आदमी खुद ही प्रभु का बनाया हुआ मंदिर है।

जितनी तुम्हारी अभीप्सा की ऊँचाई होती है, उतनी ही तुम्हारी शक्ति की गहराई भी होती है।

जो आदमी चौबीस घंटे खतरे में भी जागा हुआ जीता है वह अपने विवेक को जगा लेता है।

धार्मिक आदमी क्रोध करके क्षमा मांगने नहीं आता, वह धन्यवाद देने आता है।

धार्मिक आदमी पछताता नहीं है।

जो आदमी प्रेम है; वही प्रेम कर सकता है।

जो आदमी अपने भीतर दो हिस्सों में जीता है, वह सीधो फ्रेनीक है।

जिसको भीतर की संपत्ति दिख जाती है, उसको बाहर की दरिद्रता भी कुछ देती है।

जिसने अभी अपने को ही नहीं जाना, वह शुभ-अशुभ को कैसे जानेगा ?

जिसको मैं पकड़ में आ जाय वह मैं के बाहर हो जाता है।

जिन्होंने सत्य को जाना, उसमें से शास्त्र निकले हैं।

जो आदमी सम्यक क्रोध करना सीख जाता है, वह धीरे-धीरे क्रोध से बाहर हो जाता है। क्योंकि, उसे पता चलता है कि क्रोध का सदउपयोग भी गहरे में अपने को नुकसान पहुंचाता है।

आदमी का धार्मिक होने का एक ही अर्थ है कि एक रहस्यपूर्ण चित्त जो प्रार्थना से भरा है सब के प्रति।

जो आदमी उधार ज्ञान में दब जाता है, उसकी आत्मा कभी ऊपर नहीं उठ पाती।

जो बाहर दोष देखता है वह भटक जाता है, और जो स्वयं में दोष खोजता है वह उनके—अतिक्रमण में निश्चित ही सफल हो जाता है।

आदमी के भीतर तृष्णा की अग्नि प्रज्वलित है—तब तक सत्य की शीतलता को कैसे पायेगा ?

ध्यान रहे; बहुत दिव्यता में मानवीय नाजुकता खो जाती है और अगर भगवान को भी जीना हो तो उसे भी आदमी की तरह ही जीना होगा।

आदमी को जब शरीर के मृतिका घेरे से ऊपर उठती हुई कोई जीवन ज्योति अनुभव में आती है तब ऊर्ध्वगमन प्रारभ होता है।

धार्मिक आदमी ही नाच सकता है, गा सकता है, बिना किसी की परवाह से।
जिसके जीवन में करुणा प्रगट होती है उसका अहंकार विसर्जित होता है।
जो आदमी जीवन को गहरे से गहरे अर्थों को बिना पहचाने जीता है, वह जीता ही नहीं है।
आदमी को धर्म की जो प्यास है, उनके शोषण पर खड़ी हैं यह दलालों की दुकानें।
आदमी खालिस अच्छा पैदा होता है, यह सारे ढांचे आखिर में उसको खंडहर कर देते हैं।

संकलन—मा योग मीरा
जूनागढ़, (गुज.)

उसने कहा—'समग्र'।
'न ईश्वर न ब्रह्म। न काम न राम'।
उसने बुदबुदाया 'तत्वमसि.....'
आश्वस्त किया कहकर कि—"स्वरूप ही धर्म है।"
और तू धर्म है। यह कहकर कि "धर्म ही जीवन है।"
उसने आगे गोहार दी "और जीवन ही प्रभु है। क्योंकि वही अजर है अमर है।"
उसने मंत्र फूका—"प्रेम ही धर्म है, प्रेम ही सत्य भी। प्रेम ही जीवन है, प्रेम ही प्रभु भी।"
और समझाया कि "जहां प्रेम है वहीं अद्वैत है—
जहां अद्वैत है वहां स्वरूप ही अस्तित्व है जो समग्र है।
उसने मैं को जानने कहा उससे भागने को नहीं।
क्योंकि मैं के क्रमशः टूटने से— उस समग्र का प्रकाश भरता जाता है—जो कि सत्ता है शून्य है—
सर्व की स्वीकृति हेतु आतुर प्रेम स्वरूप—परमात्मा है।"
उसने मौन में मुखरित किया—कि "ओ चराचर जगत के निवासियो;
स्वर्ग का राज्य (Kingdom Of God) तो तुम्हारे ही भीतर है।"
और उसी स्वर्गस्थ प्रभु को उसने हर बार प्रणाम कहा।

कमलेश शर्मा, रायपुर—

अनुशासन के अनूठे आयाम

संकलन : मा योग मीरा
जूनागढ़ (गुज.)

मेरे प्रिय आत्मन,

बहुत से प्रश्न मित्रों ने पूछे हैं। एक मित्र ने पूछा है कि मनुष्य को किसी न किसी प्रकार के डिसीप्लीन (अनुशासन) की जरूरत तो होगी ही।

जरूर है। अनुशासन की जरूरत है। लेकिन वैसे अनुशासन की नहीं, जैसा अब तक रहा है। अनुशासन दो प्रकार के हैं, एक तो वह जो बाहर से थोप दिया जाय, और एक वह जो स्वयं के भीतर से आये। अब तक हमने यही किया कि सब शिस्त, सब डिसीप्लीन, सब अनुशासन ऊपर से थोपने की कोशिश की। ऊपर से हमने सिखाया है आदमी को, क्या करना है—क्या नहीं करना है। उस आदमी को दिखाई नहीं पड़ा है कि जो करना है वह करने योग्य है—जो नहीं करना है वह नहीं करने योग्य है। हमने सिर्फ ऊपर से नियम बिठा दिये हैं। उन नियमों के दोहरे दुष्परिणाम हुए हैं। एक तो उन नियमों के कारण व्यक्ति का अपना विवेक विकसित नहीं हो पाता है और दूसरा ऊपर से थोपे हुए नियम मनुष्य के भीतर विद्रोह पैदा करते हैं। जितना बुद्धिमान व्यक्ति होगा उतना स्वयं के ढंग से जीना चाहेगा। सिर्फ बुद्धिहीन व्यक्ति पर ऊपर से थोपे हुए नियम प्रतिक्रिया (रिएक्सन) पैदा नहीं करेंगे। दुनिया जितनी बुद्धिहीन थी, उतनी ऊपर से थोपे हुए नियमों के खिलाफ बगावत न थी। अब दुनिया बुद्धिमान होती चली गई है, बगावत शुरू हो गयी। सब तरफ से नियम तोड़े जा रहे हैं। मनुष्य का बढ़ता हुआ विवेक स्वतंत्रता चाहता है। स्वतंत्र का अर्थ स्वच्छंदता नहीं है। लेकिन स्वतंत्रता का अर्थ यह है कि मैं अपने व्यक्तित्व के तंत्र को निर्मित करने की स्वयं व्यवस्था चाहता हूं। अपनी व्यवस्था चाहता हूं, तो पुरानी सारी अनुशासन की परम्परा एकदम आकर गढ़े में खड़ी हो गई है। वह टूटेगी ही। इसे आगे नहीं चलाया जा सकता। उसे चलाने की कोशिश मंहगी पड़ेगी, क्योंकि जितना उसे हम चलाना चाहेंगे, उतनी ही तीव्रता से नई पीढ़ियां उसे तोड़ने को आतुर हो जायेंगी। और उनकी तोड़ने की आतुरता बिल्कुल स्वाभाविक, उचित है, गलत भी नहीं है। अब हमें एक नये अनुशासन की दिशा में सोचना जरूरी हो गया है। ऐसे अनुशासन की दिशा में सोचना जरूरी हो गया है, जो व्यक्ति के विवेक के विकास से सहज फलित होता है।

एक तो यह नियम है कि दरवाजे से निकलना चाहिये—दीवाल से नहीं निकलना चाहिये। यह नियम है, जिस व्यक्ति को यह नियम दिया गया है उसके विवेक में कहीं भी यह समझ में नहीं आया है कि दीवाल से निकलना सिर फोड़ लेना है, और दरवाजे से निकलने के अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं है। उसकी समझ में यह बात नहीं आयी है। उसके विवेक में यह बात आ जाय तो हमें कहना नहीं पड़ेगा कि दरवाजे से निकलो। वह दरवाजे से निकलेगा और यह निकलने की जो व्यवस्था है उसके भीतर से आयेगी, बाहर से नहीं। अब तक हमने शुभ क्या है, अशुभ क्या है, अच्छा क्या है, बुरा क्या है, तय कर दिया है, हमने सुनिश्चित कर दिया है। उसे मान कर चलना ही सज्जन व्यक्ति का कर्त्तव्य था।

अब यह नहीं हो सकेगा, नहीं हो रहा है, नहीं होना चाहिये। मैं जो कह रहा हूं वह यह कह रहा हूं कि हम एक-एक व्यक्ति के भीतर उतनी चेतना, उतना विवेक जगा सकते हैं कि उसे ही दिखाई पड़े कि क्या करना ठीक है और क्या करना गलत है। निश्चित ही, अगर विवेक जगेगा तो करीब-करीब हमारा विवेक एक से उत्तर देगा। लेकिन उन उत्तरों का एक सा होना बाहर से निर्धारित नहीं होगा, भीतर से निर्धारित होगा, भीतर व्यक्ति के विवेक को जगाने की कोशिश की जानी चाहिये, और विवेक से जो अनुशासन आये वह शुभ है। फिर सबसे बड़ा फायदा यह है कि विवेक से आये हुये अनुशासन म व्यक्ति को कभी परतंत्रता नहीं मालूम पड़ती। दूसरे के द्वारा लादा गया सिद्धान्त परतंत्रता लाता है और यह भी ध्यान रहे; परतंत्रता के खिलाफ हमारे मन में विद्रोह पैदा होता है। विद्रोह से नियम तोड़े जाते हैं, और अगर व्यक्ति स्वतंत्र हो अपने ढग से जीने की कोशिश से एक अनुशासन आ जाय तो कभी भी विद्रोह पैदा नहीं होता है। यह सारी दुनिया में नये बच्चे जो विद्रोह कर रहे हैं, वह विद्रोह उनकी परतंत्रता के खिलाफ है। और उन्हें सब तरफ से परतंत्रता मालूम पड़ रही है। मेरी दृष्टि यह है कि अच्छी चीज के साथ परतंत्रता जोड़ना बहुत मंहगा काम है। अच्छी चीज के साथ परतंत्रता जोड़ना बहुत खतरनाक बात है, क्योंकि परतंत्रता तोड़ने की आतुरता बढ़ेगी—साथ में अच्छी चीज भी टूटने वाली है। क्योंकि आपने अच्छी चीज के साथ परतंत्रता जोड़ी हुई है। अच्छी चीज के साथ तो स्वतंत्रता ही हो सकती है, क्योंकि अच्छी चीज का अच्छा होने के भीतर स्वतंत्रता का तत्व भी अनिवार्य है—अन्यथा; वह अच्छा नहीं हो सकता। और अब उस जगह आदमी आ गया है, जहां हम उसके विवेक को जगा सकते हैं। शिक्षा बढ़ी है, संस्कृति बढ़ी है, सभ्यता बढ़ी है, ज्ञान बढ़ा है, आदमी के विवेक को अब जगाया जा सकता है। अब उसके ऊपर से थोपना अनिवार्य नहीं रह गया है। तो मैं कहता हूं कि ऐसा अनुशासन आये जो विवेक की छाया बने, जो ऊपर से न थोप दिया गया हो।

एक बच्चे को हमने कह दिया क्रोध बुरा है, क्रोध नहीं करना है। क्रोध उठेगा। क्रोध कितना ही बुरा हो—जीवन की व्यवस्था में कहीं उसकी जरूरत है। और अगर कोई बच्चा ऐसा पैदा हो जाय; जिसमें क्रोध जन्म से ही न हो तो उस बच्चे को न आप कुछ सिखा सकेंगे न बड़ा कर सकेंगे, न बुद्धिदे सकेंगे, न उस बच्चे में कोई जान होगी, न कोई रीढ़ होगी। वह बच्चा एक कोने में बैठा-बैठा मर जायगा। क्रोध एक बल है जो जरूरी है जीवन के लिये, उस क्रोध के आधार पर बच्चे की जिन्दगी में बहुत कुछ आयेगा जो शुभ है। तो क्रोध को एकदम इन्कार कर देना खतरनाक है। प्रकृति और परमात्मा क्रोध दे रहा है। उसका कोई अर्थ है। एक आदमी है; हम ऐसा सोचें; जिसमें जन्म से क्रोध नहीं है तो आप पायेंगे उसम जीवन ही क्षीण हो गया है। वह सब तरह से सुस्त ढीला और आलसी हो जायगा और उसे किसी चीज में गतिमान नहीं किया जा सकता। अगर आप उसको गाली देंगे तो वह बैठके सुन लेगा। अगर आप उसे धक्का मारेंगे तो वह धक्का सह लेगा और बैठ जायेगा। अगर आप उसे कहेंगे कि सब दूसरे आगे निकले जा रहे हैं, तुम आगे नहीं निकल रहे हो तो वह कहेगा ठीक है। अगर उसके भीतर क्रोध का तत्व नहीं है तो उसके भीतर गति का तत्व भी नहीं होगा। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि क्रोध शुभ है। इसका मतलब केवल इतना है कि क्रोध एक सीमा तक सार्थक है—एक सीमा के बाद व्यर्थ होना शुरू हो जाता है। एक सीमा तक क्रोध भी सीढ़ी है और एक सीमा के बाद खतरनाक है। एक उम्र तक क्रोध का होना जरूरी है। और एक उम्र तक सिखाया जाना चाहिए, बजाय रोके जाने के। लेकिन हम बच्चे को क्रोध बुरा है, क्रोध पाप है, क्रोध नहीं करना है, ऐसा अनुशासन सिखा दें तो बच्चा करेगा क्या ? सिर्फ क्रोध को दबायेगा। अपने को रोकने की कोशिश करेगा। और ध्यान रहे छोटा-छोटा क्रोध निकल जाय तो खतरनाक नहीं होता है। रोज अगर क्रोध निकले तो उसकी मात्रा इतनी कम होगी जिसका कोई हिसाब नहीं। वह ऐसे ही होगा जैसे हम घर का कचरा रोज बाहर फेंक देते हैं। कचरा

फेंकना बंद कर दें—कचरा पैदा होना जारी रहेगा तो घर में महीने दो महीने में ढेर लग जाय और घर में रहना मुश्किल हो जाय। कचरा फिर फेंकना पड़ेगा। लेकिन तब वह कचरा बहुत दिखाई पड़ेगा और खतरनाक हो सकता है। क्रोध रोज थोड़ा बहुत निकल जाय तो खतरनाक नहीं है। समझा यह जाता है कि जो लोग हत्यायें करते हैं–आत्म हत्यायें करते हैं, वे लोग हैं– जो क्रोध को इकट्ठा कर लेते हैं। जिस आदमी ने रोज-रोज क्रोध कर लिया वह कभी हत्या नहीं कर पाता। इतना क्रोध ही नहीं जुटा पाता कि किसी की हत्या करने के योग्य पागल हो जाय। उतने पागलपन के लिये ज्यादा मात्रा चाहिये। तो रोज छोटी–छोटी बात में क्रोधित हो जाने वाला आदमी खतरनाक नहीं होता। कभी बहुत खतरा नहीं कर सकता। एक अर्थ में रोज छोटे मोटे क्रोध कर लेने वाला आदमी तरल होगा, उस आदमी की बजाय जो क्रोध को दबाता चला जायगा वह बहुत जटिल हो जायगा। और उसके भीतर क्रोध की मात्रा इतनी इकट्ठी हो जाने वाली है कि एक दिन विस्फोट होगा। वह विस्फोट मंहगा पड़ने वाला है। उस विस्फोट का कोई भी परिणाम हो सकता है। पर बच्चे को हम सिखा रहे हैं, क्रोध बुरा। एक अनुशासन दे रहे हैं और हम सोच रहे हैं कि हम अच्छा बना रहे हैं। हम अच्छा नहीं बना रहे हैं। मेरी दृष्टि में बच्चे को क्रोध बुरा है ऐसा ऊपर से नियम देना गलत है। बच्चे के विवेक को बढ़ाने की जरूरत है कि वह जान सके कि क्रोध क्या है ? और क्रोध में उसके व्यक्तित्व में क्या हो जाता है यह वह जानने के योग्य हो सके। धीरे-धीरे इसे तो हम उसे समझा सकते हैं और बच्चे बहुत जल्दी समझ सकते हैं।

यूरोप में एक फकीर था गुरजियेफ अभी कुछ दिन पहले। उसके आश्रम में जो भी भरती होता, उससे वह पहले कहता कि क्रोध करना सीखो और क्रोध की **ट्रेनिंग** देता—प्रशिक्षण देता कि क्रोध ऐसे करो, इतनी तीव्रता से करो, इतनी गति से करो और इतने जोर से इतनी **इन्टेनसीटी से** करो कि तुम्हारा पूरा व्यक्तित्व क्रोधित हो जाय। और तभी तुम जान सकते हो कि क्रोध क्या है। जब एक आदमी पूरा क्रोधित, पूरे क्रोध में भर आये तब गुरजियेफ कहेगा देखो। उस आदमी को चिल्लाकर कहेगा कि देखो और ऐसी **सीच्युएशन** पैदा करेगा कि कोई आदमी जो नया आया है, बिलकुल पागल हो जाय क्रोध में फिर वह चिल्लाके कहेगा देखो, **स्टॉप एन्ड सी** अब भीतर देखो कि क्रोध क्या है। उतने ज्वलंत रूप में जब क्रोध चारों तरफ जल रहा हो और कण-कण को आग भर दी हो, तब एक दफा चौंक कर आदमी भीतर देख ले कि क्रोध क्या है तो उसे झलक मिलती है। हमें कभी क्रोध की झलक नहीं मिलती है। जब हम क्रोध में होते हैं तब बेहोश होते है और जब होश में आते हैं तब क्रोध चला गया होता है। हमारा कभी मिलना नहीं होता है क्रोध से। हमारा कभी **एन्काउन्टर** नहीं होता कि हम आमने सामने मिल जायें देख लें कि क्या है ! तो गुरजियेफ कहता था, जिसने क्रोध को नहीं देखा, उसके भीतर क्रोध के सम्बन्ध में अनुशासन कभी पैदा नहीं होगा और सिर्फ नियम रह जायगा ऊपर से से थोपा हुआ, ठीक है यह बात। और बच्चे जितने सुन्दर ढंग से क्रोधित हो सकते हैं– बड़े नहीं हो सकते हैं। और अगर बच्चे का क्रोध आपने देखा है तो आप पायेंगे कि उस क्रोध में भी एक सौंदर्य है– एक गतिमयता है–एक **डाइमेन्सन** है। एक बच्चा जब पूरे क्रोध से, क्योंकि बच्चा पूरे ही क्रोध से भरता है, पैर पटक रहा है, वह चिल्ला रहा है, वह कूद रहा है, उसका कण-कण लाल हो गया है, सारी आग जल गयी है, इस वक्त बच्चे को जगाने के हमें श्रम करना चाहिये कि तू देख यह क्रोध क्या है ! हम छोड़े देते हैं इस कमरे के द्वार बंद कर देते हैं तू देख कि तेरे भीतर हो क्या रहा है। यह क्रोध क्या है– इससे तू परिचित हो जा। यह जिंदगी भर साथ रहेगा, इससे बहुत काम भी लेना है। क्रोध से परिचित कराने की जरूरत है, और ऐसे ही जीवन की सारी वृत्तिओं से जिनको हम बुरा कहते हैं। सारी वृत्तियों से परिचित कराने की जरूरत है, उनकी पूर्णता में, पूरी गहराई में। तो हमारे भीतर एक विवेक, **एक अवेयरनेस** पैदा होनी

शुरू होती है कि क्रोध क्या है। और यह भी पता चलता है कि क्रोध एक बड़ी शक्ति है, जिसका सद्उपयोग भी हो सकता है और दुरुपयोग भी। और मैं मानता हूं; विवेकशील आदमी धीरे-धीरे क्रोध का सद्उपयोग करना सीखेगा। दुरुपयोग बंद करेगा। पहला कदम क्रोध खत्म करने का नहीं होगा, पहला कदम क्रोध के सद्-उपयोग का होगा। क्रोध के सद्उपयोग हैं और जो आदमी क्रोध का सद्उपयोग करने में समर्थ हो जायगा, वह आदमी क्रोध करते क्षण में भी अभिनय ही कर रहा होगा—भीतर वह क्रोध के बाहर खड़ा होगा। नहीं तो फिर प्रयोग नहीं कर सकता। हम जिस चीज का भी उपयोग करते हैं, उससे अलग हो जाते हैं फौरन एक आदमी अगर इतना सचेत हो गया है कि क्रोध का भी सद्उपयोग कर सकता है। तो वह आदमी कभी क्रोधित नहीं है। क्रोध सिर्फ बाहर की एक घटना रह गई है, जिसका वह उपयोग कर रहा है और भीतर वह क्रोध के बिल्कुल बाहर है। तभी उपयोग कर सकता है, नहीं तो क्रोध उसका उपयोग कर लेगा। दो चीजें हैं, अगर हम बेहोश है तो क्रोध हमें जैसा चाहेगा वैसा करवा लेगा, और हम होश में हैं तो क्रोध से हम जो करना चाहेंगे, वह कर लेंगे। तो पहला कदम क्रोध के अंत करने का नहीं होगा, विवेक विकसित होगा तो क्रोध का सद्उपयोग शुरू होगा। दूसरा कदम जब सद्उपयोग में पूरा सामर्थ्य व्यक्ति का पैदा हो जाता है कि अब दुरुपयोग क्रोध का नहीं हो सकता अर्थात जब क्रोध उससे दुरुपयोग नहीं करवा सकता, वह बेहोश नहीं है, वह होश पूर्वक क्रोध को भी ईन्स्ट्रूमेंट, साधन बना लिया है। जब यह समझ पैदा हो जाती है तब उसे दिखाई पड़ता है कि सद्उपयोग में भी गहरे नुकसान पहुंच रहे हैं। यह तब तक दिखाई नहीं पड़ता जब तक कोई सद्उपयोग करना न सीख ले। तब दिखाई पड़ता है कि सद्उपयोग तो हो रहा है, वह दूसरे के लिए हो रहा है। जैसे एक बाप अपने बेटे पर नाराज हो रहा है, नाराजगी काम की ही हो सकती है और कभी नाराजगी बहुत काम की होती है। कभी बहुत सार्थक हो सकती है। कभी बच्चे के मन पर उस नाराजगी के क्षण में कोई ऐसी छाप पड़ सकती है कि जो जिंदगी भर के लिए कीमती हो जाता है। लेकिन यह उपयोग करने वाले पर निर्भर है, नहीं तो ऐसी छाप भी पड़ सकती है कि जिन्दगी भर के लिए बाप दुश्मन हो जाय। सच तो यह है कि अगर बाप क्रोध करना जानता हो, बाप के क्रोध में बेटे को प्रेम का पता चलेगा अगर उपयोग करना जानता हो तो वह जानेगा कि यह प्रेम का सबूत है। अगर बाप उपयोग करना जानता हो तो क्रोध में प्रेम ही दिखाई पड़ेगा। और अगर उपयोग करना न जानता हो तो प्रेम में भी प्रेम दिखाई पड़ने वाला नहीं है। बाप प्रेम करेगा और बेटा समझेगा कि कोई तरकीब है। (हास्य) कुछ करवाने के इरादे हैं। और वह बच्चा अभागा है जिनके माँ-बाप ने कभी उन पर ज्वलंत क्रोध नहीं किया। ज्वलंत क्रोध बड़ी और बात है। ज्वलंत क्रोध का मतलब है कि माँ बाप पूरी तरह इन्कार कर दें अपने पूरे व्यक्तित्व से किसी बात को कि यह गलत है, थोप नहीं रहे हैं उसके ऊपर कि तू भी गलत मान—लेकिन, उनके पूरे व्यक्तित्व को गलत लग रही है वह बात, और वह आग से भर गये हैं। यह छाप अगर बच्चे पर छूट जाय तो उपयोगी हो सकती है। लेकिन यह सिर्फ उपयोग करने वाला ही यह छाप छोड़ सकता है।

एक लड़की को मैं जानता हूं। उसका डाईवोर्स हो गया, पति से अलग हो गई है तो मां-बाप उसकी बहुत चिंता करने लगे कि वह दुःखी न रह जाय। तो न कभी उस पर नाराज होते हैं, नाराजगी का मौका होता है तो भी टाल जाते हैं क्योंकि वह वैसे ही दुःखी है, उसको कोई और दुःख नहीं देना है। वह जो कहती है; मान लेते हैं। चाहे वह मानने योग्य हो या नहीं। वह जो मांग करती है; पूरी कर देते, चाहे वह उनकी खर्च की सीमा के भीतर हो या नहीं। माँ-बाप इस ख्याल में थे कि वह इस भांति लड़की को सुखी कर सकेंगे। उस लड़की ने मुझे कहा कि मैं इस घर में एक मिनट नहीं रहना चाहती हूं, ऐसा लगता है कि मुझे कोई भी प्रेम नहीं करता। क्योंकि कोई मुझे न कभी इन्कार करता है, न कोई कभी मुझ पर

नाराज होता है। ऐसा लगता है कि मेरे से किसी का कोई गहरा संबंध नहीं है। कोई गहरा संबंध मेरा किसी से नहीं मालूम पड़ता, ऐसा लगता है कि सब मेरे साथ अभिनय कर रहे हैं जैसे कि क्रोध करना चाहते हुए भी क्रोध नहीं करते। कहीं मुझे दुख न लग जाय, ऐसा लगता है कि सब मुझ पर दया कर रहे हैं, और दया बहुत अपमान जनक है। कभी आपने ख्याल किया कि दया बहुत अपमानजनक है। प्रेम का **सबस्टीट्यूट** नहीं है दया। जिसको हम प्रेम करते हैं, वह दया नहीं मांगता और जिस दिन आपने दया देना शुरू की, प्रेम खतम हो जायगा। वह जानता है कि प्रेम खतम हो चुका है। क्योंकि दया जिस पर हम करते हैं, वह नीचा हो जाता है, दीन हो जाता है, हीन हो जाता है, हम ऊपर हो जाते हैं। प्रेम जिसको हम करते हैं, उसको हम समान तल पर खड़ा करते हैं, दया जिसे हम करते हैं, उसे नीचे खड़ा कर देते हैं। कोई पत्नि दया नहीं चाहती है पति से। कोई बेटा अपनी माँ से दया नहीं चाहता, प्रेम चाहता है। प्रेम वक्त पर नाराज भी होता है। असल में प्रेम ही नाराज हो सकता है, क्योंकि प्रेम को पता है, नाराजगी से कुछ भी टूटने वाला नहीं है। प्रेम इतना गहरा है कि नाराजगी की गहरी से गहरी चोट भी सिर्फ वृक्ष को हिलायेगी और कुछ भी नहीं कर पायेगी, थोड़ी देर बाद हवायें चली जायेंगी—वृक्ष अपनी जगह खड़ा हो जायगा। सिर्फ प्रेम ही क्रोधकर सकता है। जिससे हमने प्रेम नहीं किया, उस पर हम क्रोध भी नहीं कर सकते। इसीलिये अजनबी से हमारा क्रोध नहीं होता। जिससे हम जितने ज्यादा निकट हैं, उससे ही हमारा क्रोध होता है। जितनी निकटता बढ़ती है, उतने ही क्रोध की संभावना बढ़ती है। क्रोध का उपयोग अगर कोई सीख ले तो क्रोध के पीछे छाया प्रेम की ही होती है, लेकिन हमें क्रोध का कोई उपयोग नहीं मालूम और बचपन से सिखा दिया गया, क्रोध बुरा है। उसको दबाये चले जाते हैं, फिर कभी करते हैं, लेकिन वह करना बिल्कुल बेहोश होता है। उसका कोई शुभ परिणाम नहीं होता है। उसका सिवाय अशुभ के कुछ नहीं होता और जब अशुभ परिणाम होता है तो हम पुरानी धारणा को फिर मजबूत कर लेते हैं,देखो बचपन से सिखाया था; क्रोध बुरा है, यह बुरा हो गया, फिर हम दबाने लगते है, फिर एक **वीस्यस** सर्कल शुरू हो गया। एक दुष्चक्र शुरू हो गया। हम दबायेंगे, फिर क्रोध फूटेगा। जब फूटेगा तब नुकसान होगा, जब नुकसान होगा तब दबाने की पुरानी धारणा फिर मजबूत हो जायगी। फिर इकट्ठा करेंगे, फिर दबायेंगे, पूरी जिन्दगी क्रोध और पश्चाताप—क्रोध और पश्चाताप उसी में हम जियेंगे, और यह बात जो मैं क्रोध के लिए कह रहा हूं; सब वृत्तियों के लिये लागू है यह ख्याल में रख लेना। जब कोई व्यक्ति क्रोध का सम्यक् उपयोग करना सीख जाता है, सम्यक् क्रोध करना सीख जाता है—राइट एंगल तब उसे पहली दफे दिखाई पड़ता है कि ठीक क्रोध से भी दूसरे का भला लाभ हो जाय लेकिन मुझे गहरा नुकसान होता ही है। कहीं न कहीं मेरे भीतर कुछ चीज टूट जाती है। तब वह क्रोध के ऊपर भी उठने का श्रम करेगा। लेकिन अब यह श्रम में दमन नहीं होगा, अब समझ होगी, बुद्धि होगी, विवेक होगा। और अगर आपको दिखाई पड़ जाय कि सांप जा रहा है, तो आपको सांप के ऊपर से निकलने की इच्छा का दमन थोड़े ही करना पड़ता है? सांप दिख गया कि आप जग जाते हैं बिना दमन किये। सांप जा रहा है और आप इस रास्ते से गुजरते थे तो जब आपको सांप दिखता है कि जहर सामने है और आप बगल में हट जाते हैं तो आपको कोई सप्रेशन थोड़े ही करना पड़ता है। ऐसा नहीं होता कि बगल में हटने के लिए सांप पर से निकलने की इच्छा को दबाना पड़ता हो। कोई दमन नहीं करना पड़ता सिर्फ अन्डर स्टेंडिंग कि सांप है; छलांग लग जाती है, आप बच जाते हैं—सांप निकल जाता है। कहीं पीछे यह आकांक्षा नहीं छूट जाती कि सांप के ऊपर से निकलना था। जब क्रोध भी सांप की तरह दिखाई पड़ने लगता है, अनुभव में आने लगता है तो दमन नहीं करना पड़ता है। आप बस बच के निकल जाते हैं। क्रोध एक तरफ हो जाता है, आप दूसरी तरफ हो जाते हैं, और जब क्रोध से आप बहुत बार बचके निकल जाते हैं और दमन नहीं होता

तो क्रोध इकट्ठा नहीं होता। उसकी क्षमता धीरे धीरे क्षीण होती चली जाती है। एक क्षण आता है कि आदमी क्रोध के बिलकुल बाहर हो जाता है। फिर भी हो सकता है; वैसा आदमी भी कभी क्राध का प्रयोग करे लेकिन तब वह निपट **एक्टिंग** होगी, बिलकुल अभिनय होगा। उसमें कुछ भी नहीं इससे ज्यादा होने वाला। मेरा कहना यह है कि विवेक विकसित करने की बात है एक-एक चीज के संबंध में। लंबी प्रक्रिया है। किसी को बंधे बधाये नियम दे-देना बहुत सरल है कि झूठ मत बोलो- सत्य बोलना धर्म है, पर नियम देने से कुछ होता है ? नियम देने से कुछ भी नहीं होता। पुराना अनुशासन गया, आखिरी सांसे गिन रहा है और पुराना मस्तिष्क उस अनुशासन को जबरदस्ता रोकने की कोशिश कर रहा है उसे डर लग रहा है कि अगर अनुशासन चला गया क्योंकि उसका अनुभव यह है कि अनुशासन के रहते भी आदमी अच्छा नहीं था और अगर अनुशासन चला गया तो मुश्किल हो जायेगी। उसका अनुभव यह है कि अनुशासन था तो भी आदमी अच्छा नहीं था तो अनुशासन नहीं रहेगा तो आदमी का क्या होगा ? उसे पता नहीं है कि आदमी के बुरे होने में उसके अनुशासन का नब्बे प्रतिशत हाथ था। गलत अनुशासन था। अज्ञानपूर्ण था। थोपा हुआ था। जबरदस्ती थी वह। एक अनुशासन पैदा करना पड़ेगा। और वह अनुशासन ऐसा नहीं होगा कि हम बंधे हुए नियम दे दें, ऐसा होगा कि हम उसके विवेक को बढ़ाने के मौके दें और उसके विवेक को बढ़ने दें और अपने अनुभव बता जीवन के एक ओर हट जाएं रास्ते से बच्चों के। एकदम रास्ते पर खड़े न रहें उनके। सब चीजों में उनको बांधने और जंजीरों में कसने की कोशिश मत करें। ये जंजीरें तोड़ने को वे उत्सुक हो गये और कोई जंजीर बरदास्त नहीं करेंगे। अगर भगवान भी जंजीर मालूम पड़ेगा तो टूटेगा, बच नहीं सकता। अब सोने की भी जंजीर बचेगी नहीं क्योंकि जंजीर के खिलाफ मामला खड़ा हो गया है। और अच्छा हुआ है। बुरा नहीं हुआ, जंजीर बचनी भी नहीं चाहिये। लेकिन मनुष्य चेतना के विकास का क्रम है। एक क्रम था; जब चेतना इतनी विकसित नहीं थी, नियम थोपे गये थे, शायद उसके सिवाय कोई उपाय नहीं था। अब नियम थोपने की जरूरत नहीं रह गयी है। अब नियम बाधा बन गये हैं। अब हमें समझ (अन्डर स्टेन्डिंग) ही बढ़ाने की दिशा में श्रम करना पड़ेगा। तो मैं कहना चाहता हूं, समझ-विवेक एकमात्र अनुशासन है। पूरी प्रक्रिया बदलनी पड़ेगी क्योंकि विवेक को जगाने की प्रक्रिया बिलकुल अलग होगी। नियम थोपने की प्रक्रिया बिलकुल अलग थी। **डायरेक्टली अपोजिट** है, दोनों बिलकुल विरोध है। खतरे उठाने पड़ेंगे। खतरे पुरानी प्रक्रिया में भी बहुत उठाये हैं। सबसे बड़ा खतरा तो यह उठाया कि आदमी जड़ हो गया। जिसने नियम माना वह जड़ हो गया—जिसने नियम नहीं माना वह बरबाद हो गया। दोनों विकल्प बुरे थे। अगर किसीने पुराना अनुशासन मान लिया तो वह बिलकुल **ईडीयोटीक** हो गया, बिलकुल जड़ हो गया। उसकी बुद्धि खो गई। और जिसने बुद्धि को बचाने की कोशिश की उसे नियम तोड़ने पड़े। वह बरबाद हो गया, वह अपराधी हो गया, वह **प्रोब्लेम** बन गया, समस्या बन गया, वह एक मुश्किल की बात बन गया। दोनों तरफ विकल्प बुरे सिद्ध हुए। जिसने नियम माना वह खराब हुआ क्योंकि नियम ने उसको जड़ कर दिया, गुलाम बना दिया। और जिसने नियम तोड़ा वह स्वच्छंद हो गया। नियम से अच्छा फल नहीं आया। यह हमारी जो आदमियत है आज इसी तरह की, खतरे इसमें हैं—इसमें खतरे बिल्कुल दूसरी तरह के हैं जो मैं कह रहा हूं। इसमें खतरे यह नहीं हैं जो पिछली परंपरा में थे। इसमें खतरा सिर्फ एक है कि थोड़ी देर लगेगी और धैर्य रखना पड़ेगा बस और कुछ भी नहीं। धैर्य की बहुत कमी है। माँ-बाप चाहते हैं कि बेटा आज बूढ़ा हो जाय। यह बिल्कुल पागलपन की बातें है। बूढ़े के जिंदगी भर का अनुभव बेटे पर आज कैसे थोपा जा सकता है ? बेटा बूढ़ा होते-होते बूढ़ा होगा। वक्त लेगा, समय लेगा और जल्दी में नुकसान हो सकता है। जल्दी में यह हो सकता कि उसकी विकास प्रक्रिया ही ठप हो जाय और वह हमेशा के लिये बच्चा रह जाय। वह कभी भी प्रौढ़ (मेच्योर) न हो सके।

वक्त लगेगा, बच्चे के साथ थोड़ी समझ लेनी पड़ेगी। बहुत धैर्य रखना पड़ेगा। आने वाली पीढ़ियों के साथ अगर धैर्य नहीं रखा गया तो खतरा दुनिया के सामने है। बहुत धैर्य की जरूरत है। बड़ी शक्ति जब प्रगट होती है तो धैर्य की जरूरत पड़ती है। बड़ी शक्ति प्रगट हो रही है पृथ्वी पर। ऐसी कभी भी प्रगट नहीं हुई थी। मनुष्य चेतना ऐसी जगह आ गयी है, जहाँ से छलाँग लगेगी। जहाँ से बिल्कुल नये मनुष्य का जन्म होगा। तो ऐसी जगह पर बड़े संकट (क्राइसीस) का मौका तो होता ही है। मौका खड़ा है। अगर पुराने मन ने जिद्द की कि हम पुराने नियम जारी रखेंगे तो भी छलांग लगेगी। लेकिन, तब सब टूट के छलांग लगेगी। सब नष्ट हो जायगा। उसमें अच्छा भी जायगा, बुरा तो जायगा ही। लेकिन अगर पुराने मन ने थोड़ी समझ जाहिर की और नई जो संभावना प्रगट हो रही है, नया जो मनुष्य पैदा हो रहा है, उसको समझने की कोशिश की तो बहुत फर्क पड़ जायगा। पीछे फ्रान्स में, विश्वविद्यालय में शोर गुल, उपद्रव बहुत हुए। अध्यापकों ने बहुत समझाने की कोशिश की। अध्यापकों ने जो समझाया उसके उत्तर में लड़कों ने सारी दिवालों पर विश्वविद्यालय की एक वाक्य लिख दिया बड़े-बड़े अक्षरों में, **"प्रोफेसर्स यु आर ओल्ड"** कहा कि हम एक ही उत्तर देना चाहते हैं कि अध्यापक-गण आप बूढ़े हो गये हैं और जो नया हो रहा है; उसको आप नहीं समझ पा रहे हैं, आप हमें समझाने की कोशिश फिजूल कर रहे हैं·····उत्तर बहुत सांकेतिक है। अर्थ पूर्ण है। सारी व्यवस्था पुरानी हो गई है। सब **ओल्ड** हो गया है और सब जीर्ण हो गया है। और पांच हजार वर्ष के अनुभव से असफल हो गया है, सफल भी नहीं है। तो मैं जो कहना चाहता हूं वह अनुशासन एक तरह का होगा। होना यह चाहिये, कि वह भीतर से आये। और हम युवकों को, बच्चों को, आने वाली पीढ़ियों को भीतर से तैयार कर सकें कि वे अनुशासन अनुभव करें। बाहर से तैयारी अब नहीं हो सकती। आपको मुझे सुनना है तो आप चुप बैठे हैं, यह भीतर से आया हुआ अनुशासन है, इसमें कोई ऊपर थोपने का सवाल नहीं है। एक बोलने वाला चिल्ला-चिल्ला के कह रहा है कि चुप रहो, शांत रहो, मेरी बात सुनो कि मैं क्या कह रहा हूं और बात-चीत चल रही है और कोई सुनने को राजी नहीं है। यह अनुशासन ऊपर से थोपा जा रहा है। नहीं, अगर आप बात-चीत करते चले जा रहे हैं और मुझे नहीं सुनना है तो आपके समझने की जरूरत नहीं है, मेरे समझने की जरूरत है कि मैं बोलना बंद करूँ और बिदा हो जाऊँ। **(हास्य)** इसमें आपको समझाने की क्या जरूरत है? बात खतम हो गई है। मुझे जानना चाहिये कि लोग सुनने को राजी नहीं—मुझे विदा हो जाना चाहिये। तो वह मुनि वो समझाने वाला बिदा होना नहीं चाहता। वह आपको ही कह रहा है, चुप रहो·····डंडे के बल पर चुप रहो·····नर्क चले जाओगे, चुप नहीं रहोगे तो। वह आपको चुप कराने की कोशिश कर रहा है, खुद चुप हो जाय, नहीं सुनना है लोगों को बिदा हो जाय। लोगों को सुनना होगा वह चुप होंगे, नहीं सुनना होगा वह चुप नहीं होंगे। उन्हें सुनना होगा तो वह पकड़ के ले आयेंगे कि हम सुनने को राजी हैं। उन्हें नहीं सुनना होगा बात खतम हो गयी। सुनना जरूरी भी क्या है? सुनने के लिये ही कोई तैयार न हो तो सुनना जरूरी कहाँ है? मगर अब तक यही था कि समझाया जा रहा है कि जब कोई बोल रहा है तो चुप रहो। चाहे वह कुछ भी बोल रहा है। वह अनर्गल बोल रहा है तो भी चुप रहो। वह अब नहीं चलेगा, अब नहीं चल सकता है। अब बोलने वाले को जानना पड़ेगा कि बोलने वाली बात होगी तो ही सुनी जा सकती है क्योंकि तब एक भीतरी अनुशासन पैदा होता है। जिसे सुनना है; वह अपनी सांस तक रोक लेता है कि कहीं कुछ चूक न जाय। वह एक भीतरी अनुशासन है, अब बाहरी अनुशासन नहीं चल सकता है। बाप बेटे से कह रहा है कि मैं तुम्हारा पिता हूं इसलिये आदर करो। यह कोई तर्क का नियम थोड़े ही है कि आदर इसलिये करें क्योंकि तुम पिता हो! तुम पिता हो यह सिद्ध करो, आदर आना होगा आ जायगा नहीं आना होगा नहीं आयगा। और मैं मानता हूं कि अगर सिद्ध कर सके कोई कि मैं पिता हूं तो आदर आता है।

यह एक भीतरी अनुशासन है उसको कोई नहीं रोक सकता। यह असंभव ही है कि पिता के प्रति आदर न हो। लेकिन सिर्फ जन्मदाता पिता नहीं है। **प्रोड्यूसर**, उत्पादक है, पिता नहीं है। और उत्पादक कह रहा है कि मैं पिता हूं, अनुशासन नही आने वाला है क्योंकि लड़के समझ रहे हैं कि सिर्फ तुमने पैदाकर दिया, बस बात खतम हो गयी ! और पैदा करने में तुम कोई बहुत समझ पूर्वक पैदा कर दिये हो ऐसा भी मालूम नहीं पड़ता, आकस्मिक घटना है। तुम कोई पैदा करना ही चाहते थे ऐसा भी नहीं मालूम पड़ता। हमने सोचा भी था, तुमने मुझे निमंत्रण भी दिया था, ऐसा भी नहीं मालूम पड़ता है। अतिथि हूं, आकस्मिक हूं। तुमने झेल लिया है; दूसरी बात है। यह सब हास्स हो गया है। अब पिता होने के लिये कुछ और करना पड़ेगा, पैदा करना काफी नहीं है। और मैं मानता हूं; कभी काफी नहीं था। पिता होना सिद्ध करना पड़ेगा। पिता होना बड़ी **डेलीकेट**, बड़ी नाजुक बात है। माँ होने से ज्यादा नाजुक बात है। क्योंकि मां होना बहुत कुछ प्राकृतिक है, पिता होना बिलकुल ही अप्राकृतिक है। पिता होना बिलकुल सामाजिक घटना है। पिता के बिना काम चल सकता है। पिता कोई अनिवार्य बात नहीं है। पिता मनुष्य की संस्कृति की खोज है। माँ तो होगी ही पिता के बिना हो सकती है। पिता का पता लगाना मुश्किल हो सकता है। यह जानके आप हैरान होंगे कि अंकल चाचा पुराना शब्द है, फादर–पितावाद का शब्द है। कोई तीन चार हजार वर्ष पहले पिता का कोई पता नहीं चलता था। स्त्रियां थीं और पुरुष थे और किन किन में संबंध होता था, कुछ पक्का नहीं था। पिता कौन है यह तय करना मुश्किल था, सब अंकल थे। जो एक उमर के थे, बड़े थे। वह सब अंकल थे। उनमें कोई पिता होगा। पिता तो बाद में आया जब स्थिर हो गई बात और पति-पत्नि सुनिश्चित हो गये और एक घर बस गया, और पति-पत्नि तय हो गये कि उनके ही बीच संबंध हो सकता है और किसी के बीच संबंध नहीं तब पिता आया। पिता बहुत नई घटना है और डर है कि विदा न हो जाय। (हास्य) इसका पूरा डर है, क्योंकि पिता की संस्था बहुत योग्य सिद्ध नहीं हुई है इसलिए विदा हो सकती है। रूस में या नये समाजों में चिंता हो रही है, इस बात की कि पिता को विदा किया जाय। क्योंकि, संस्था कोई बहुत योग्य साबित नहीं हुई। खतरा इस बात का है कि पिता का बदला जा सके। कुछ नया इन्तजाम हो सकता है। पिता सिद्ध करना पड़ेगा। एक गुरु कह रहा है कि मुझे सम्मान दो, क्योंकि मैं गुरू हूं। यह बात ही कहना गलत है। जो गुरू यह कहे कि मुझे सम्मान दो, जानना चाहिये कि वह गुरू होने के योग्य न रहा। बात खतम हो गई है। यह कहने की बात है ? यह माँगना पड़ेगी ! उसे गुरू होना सिद्ध करना चाहिये. वह सिद्ध कर दें, और विद्यार्थी पर नहीं छोड़ना चाहिये कि वह शिष्य होना सिद्ध करे, क्योंकि शिष्य अभी-अभी आया है, नया-नया है, उस पर नहीं छोड़ा जा सकता यह मामला। वह अभी दुनिया शुरू कर रहा है। यह मामला, यह जिम्मेदारी यह **रिसपानसिबिलिटी** गुरु की है कि वह सिद्ध करे कि मैं गुरू हूं। तो मेरा मानना है कि गुरू अगर सिद्ध कर दे कि गुरु है तो शिष्य के भीतर एक भीतरी डिसाईपलशिप, जिसको कहना नहीं पड़ता, एक भीतरी शिष्यत्व पैदा होना शुरू होता है—जिसमें सम्मान है। जिसमें अपमान असंभव है। क्योंकि जिससे हमने कुछ भी पाया है उसका अपमान बिलकुल असंभव है। लेकिन जिससे हमने कुछ भी न पाया हो, जो सिर्फ तनखा पा रहा हो और मशीन की तरह आकर कुछ बोल जाता हो और जिससे हमारा कोई आंतरिक संबंध नहीं, कोई भीतरी नाता न बनता हो। विश्वविद्यालय के प्रधान को हम कुलपति कहते हैं। कुलपति मतलब घर का बड़ा और उसको लड़कों का नाम भी पता नहीं कि कौन कौन पढ़ता है, कौन कौन नहीं पढ़ता। फैक्टरी है—युनिवर्सिटी; यह कोई घर तो नही है। तो उसको मेनेजिंग डायरेक्टर या कुछ ऐसा नाम देना चाहिये, वाईस चांसलर को। एक फैक्टरी है युनिवर्सिटी, जहाँ हम धंधा चला रहे हैं पढ़ाने का। एक फेक्टरी है; जहां **सिफ्टें** चल रहीं सुबह, दोपहर, शाम। फेक्टरी की **सिफ्ट** जैसे बदलती है, वैसा काम चल रहा है। वहाँ नौकरी के

सलुक पढ़ा रहे हैं; उसको कुलपति कहे चले जा रहे हैं। कुलपति पुराना शब्द है, बड़ा अर्थपूर्ण था। घर के बड़े का नाम था। जो पूरे कुल का पिता की तरह था। जो अपने बच्चों के साथ जी रहा था, उनकी चिंता कर रहा था, उनकी बीमारी की, उनके स्वास्थ्य की, उनकी समझ की, उनके ज्ञान की सारी चिंता कर रहा था। जो उनके लिये फिकर में था, जो रात बीमार पड़ते थे तो उनके खाट पर आकर रात भर बैठा भी रहता था। वह कुल पति था तो समझ में आता था। उसके प्रति आदर रहा होगा। वह अनिवार्य था, उसको मांगा नहीं गया होगा। अब इस कुलपति को जिसे हम सिर्फ नाम से कुलपति कहे चले जा रहे हैं, जिसका कुलपति होने से कुल इतना संबंध कि वह राजनीतिक तीकड़म में जीत गया है और चुनाव जीत लिया है। ऐसे कुलपति होना भी कोई चुनाव से हो सकता है ? ऐसा तो कल पिता के लिये भी हम कर सकते हैं। **हास्य** कि, एक लड़के के लिये चार पिता खड़े हो जायें कि हम चुनाव लड़ते हैं—जो जीत जाय वह तुम्हारा बाप। फिर तुम आदर देना उस बाप को। कैसे संभव होगा यह? कुलपति चुनाव से नहीं आया था।.....एक कुल था, एक घर था, सिखाने वालों का एक परिवार था, उस परिवार में जो सर्वाधिक वृद्ध था, सबसे ज्यादा सीखा था, सबसे ज्यादा सिखाया था, सबसे ज्यादा प्रेमपूर्ण था, पिता होने योग्य था, वह पिता बन गया था। यह बिलकुल सहज घटना थी। तो उसके प्रति आदर था। अब उस कुलपति का आदर आज का कुलपति मांगता है तो सब बेहूदगी बातें हो जाती हैं। कोई नहीं आदर देगा, पत्थर पड़ेंगे। चुनाव करने वालों पर पत्थर ही पड़ सकते हैं और वह माँग करता है कुलपति की, क्योंकि मैं कुलपति हूं इसलिये मुझे आदर उतना मिलना चाहिये, जितना कुलपति को, गुरु को मिलता था। बेहूदी बातें हैं, **एब्सर्ड** इनका कोई अर्थ संगति नहीं है। आने वाले भविष्य में हमें समझना पड़ेगा कि कुलपति सिद्ध करो। करो, गुरु सिद्ध करो और गुरु सिद्ध करना साधारण बात नहीं है। बहुत असाधारण घटना है। इतना आंतरिक संबंध बनाना, इतना प्रीतिपूर्ण संबंध बनाना, इतना प्रेम देना कि दूसरा अंगत हो जाय। दुसरा झुक जाय, झुक जाना पड़े, उसे ख्याल भी कभी न आये कि वह झुका। क्योंकि, जिसको ख्याल आ गया झुकने का वह अकड़ जायगा। क्योंकि कोई झुकना नहीं चाहता। और क्यों कोई झुकना चाहे ? और जिससे कहा गया कि झुको, उसके मन में सख्ती पैदा हो जायगी। झुकने के प्रति दुश्मनी पैदा हो जायगी। अगर झुकेगा तो भी मन में घृणा पोष लेगा, नहीं झुकेगा तो अहंकार और दंभ मजबूत हो जायेगा। नहीं यह कहने की बात नहीं है कि कोई झुके। जब कोई आदमी इस योग्य होता है तो किसी को झुकने का आ जाता है। अनजाने कोई झुक जाता है। तब एक और ही बात है। एक भीतरी अनुशासन की बात है। तो शिस्त ऊपर से नहीं थोपने हैं आने वाले जगत में भीतर से लाने हैं। और बहुत से प्रश्न हैं वह फिर कभी हम बात करेंगे।

●●

नव–संन्यास आंदोलन : आधार की शिलायें

(पिछले माहों बंबई क्रास मैदान में आयोजित पंच-महाव्रत प्रवचनों के संदर्भ में आचार्य श्री के प्रश्नोत्तर प्रवचन, जो जीवन में संन्यास के अंतर्द्वारों को खोलते हैं।)

संकलन : **स्वामी योग चिन्मय, बंबई।**

प्रश्न : आचार्य श्री, आपने कहा है कि आत्म अज्ञान भी हिंसा का स्रोत है, और कल आपने कहा कि हिंसा वृत्ति के लिए मनुष्य स्वयं जिम्मेदार है। तो क्या आत्म अज्ञान के लिए भी मनुष्य जिम्मेदार है ? क्यों और कैसे, इसे स्पष्ट करें।

उत्तर : अंधेरी रात हो अमावस की और कोई अपनी गुहा में बैठा हो अंधकार में डूबा हुआ, तो आँख बन्द रखे या आंखें खुली रखे इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। आंखें बन्द हों तो भी अंधकार होगा, आंखें खुली हों तो भी अंधकार होगा। लेकिन फिर सुबह हो जाय, सूर्य निकल जाय, उसकी किरणों का जाल उस गुहा के द्वार पर फैल जाय, पक्षी गीत गाने लगें और फिर भी वह आदमी अपनी आंखें बन्द किये बैठा रहे तो फर्क पड़ता है। रात के अंधकार में आंखें बन्द थीं या खुली थीं, कोई अंतर न पड़ता था और रात के अंधकार की कोई भी जिम्मेदारी उस गुहा में बैठे हुए आदमी की न थी। अंधकार था, वह स्थिति थी, लेकिन सुबह जब सूरज निकल आया हो तब भी अगर वह आदमी आंखें बन्द किये बैठा रहे तो भी अंधकार उसे दिखायी पड़ेगा। वह उसकी अपनी जिम्मेवारी है। वह चाहे तो आंख खोल सकता है और अंधकार से मुक्त हो सकता है। पशु का जीवन अमावस की अंधेरी रात जैसा जीवन है। आत्म ज्ञान की वहां संभावना नहीं है। पशु में कोई बोध नहीं है, स्वयं के होने का और कोई विकल्प भी नहीं है, कोई स्वतंत्रता भी नहीं है कि वह स्वयं को जान सके। वह संभावना ही नहीं है, इसलिए पशु को आत्म अज्ञान के लिए जिम्मेवार नहीं कहा जा सकता। वह अंधेरी रात में है और अंधेरे के लिए जिम्मेवार नहीं है। इसलिये पशु आत्म ज्ञान न खोजे तो उसे दोषी भी नहीं ठहराया जा सकता है, लेकिन आदमी पशु की यात्रा से उस जगह प्रवेश कर गया है, चेतना के लोक में, जहां सूर्य का प्रकाश है और अब भी अगर कोई आदमी अंधेरे में है तो उसकी जिम्मेदारी सिवाय उसके और किसी की नहीं हो सकती। हम यदि आत्म अज्ञानी हैं तो अपनी आंखें बन्द रखने के कारण हैं। वह हमारी स्थिति नहीं है, वह भी हमारा चुनाव है। प्रकाश चारों तरफ मौजूद है। आदमी उस जगह खड़ा हो गया है विकास के दौर में, जहां से वह स्वयं को जान सकता है। नहीं जानता तो स्वयं के अतिरिक्त और कौन जिम्मेवार होगा। इसका यह अर्थ नहीं कि मैं कह रहा हूं वह आत्म अज्ञान का पैदा करने वाला है। नहीं, आत्म अज्ञान है, लेकिन आदमी उसे विध्वंस नहीं कर रहा है तो भी जिम्मेवारी उसकी है। वह आत्म अज्ञान को पैदा करने वाला नहीं है लेकिन विध्वंस करने वाला बन सकता है और नहीं बन रहा है। इसलिये रिसपाँस-बिलिटी, जिम्मेवारी आदमी की है। आदमी आत्म अज्ञानी हो तो यह उसका अपना ही निर्णय है, आंख उसने ही बन्द रखी है। रोशनी की अब कोई कमी नहीं है।

सात्र का एक बहुत प्रसिद्ध वचन मुझे स्मरण आता है—प्रसिद्ध भी और अनूठा भी। सात्र का वचन है कि मैन इज कडैम्ड टू बी फ्री। आदमी स्वतंत्र होने

को विवश है, मजबूर है। सिर्फ एक स्वतंत्रता आदमी को नहीं है, बाकी सब स्वतंत्रता उसे है। चुनाव करने के लिए आदमी मजबूर है, सिर्फ एक चुनाव आदमी नहीं कर सकता। वह इतना भर नहीं चुन सकता कि चुनाव न करना चुन ले, यह भर नहीं चुन सकता। ही कैन नाट चूज टू चूज। बाकी तो उसे सब चुनाव करना ही पड़ेगा। इसलिए न करने की बात नहीं चुन सकता, क्योंकि यह भी चुनाव ही होगा। आदमी को प्रतिपल चुनना ही पड़ेगा। आदमी एक चुनाव की यात्रा है, पशु चुनाव की यात्रा नहीं है। पशु जो है वह है, और अगर पशु जैसा भी है उसकी जिम्मेवारी किसी पर होगी तो परमात्मा पर होगी। आदमी परमात्मा की जिम्मेवारी के बाहर है। पशु के होने की जिम्मेवारी परमात्मा पर होगी। पशु जैसा है, है। वृक्ष जैसे हैं, उनको हम दोषी नहीं ठहरा सकते और न ही हम उन्हें प्रशंसा के पात्र बना सकते हैं। आदमी बाहर हो गया है उस वर्तुल के जहां से वह चुनाव के लिये स्वतंत्र है। अब अगर मैं आत्म अज्ञानी हूं तो यह मेरा चुनाव है और आत्म ज्ञानी हूं तो यह मेरा चुनाव है। अब अगर मैं दुखी हूं तो यह मेरा चुनाव है, और मैं आनंदित हूं तो यह मेरा चुनाव है। आंखें खुली रखूं या बन्द, यह मेरा चुनाव है। चारों ओर प्रकाश मौजूद है। अब अन्धकार में रहना मेरे हाथ की बात है इसलिए मैंने कहा कि आत्म अज्ञान के लिए मनुष्य जिम्मेवार है। अब मनुष्य अपनी जिम्मेवारी से मुक्त नहीं हो सकता। अब वह प्रतिपल ज्यादा से ज्यादा जिम्मेवार होता चला जायेगा। मनुष्य की यह जिम्मेवारी ही उसकी गरिमा और गौरव भी है, यही उसकी मनुष्यता भी है, यहीं से वह पशुता के बाहर निकलता है इसलिए यह भी मैं आपसे कहना चाहूंगा कि जिन चीजों में हम बिना चुनाव किये बहते हैं उन चीजों में हम पशु के तुल्य होते हैं। यह भी मजे की बात है कि हिंसा आमतौर से हम चुनते नहीं, अतीत की आदत के कारण करते चले जाते हैं। अहिंसा चुननी पड़ती है इसलिए अहिंसा एक उत्तरदायित्व है और हिंसा एक पशुता है। अहिंसा मनुष्यता की यात्रा पर एक मंजिल है, हिंसा सिर्फ पुरानी आदत का प्रभाव है।

मैंने निश्चित ही कहा है कि हिंसा आत्म अज्ञान से पैदा होती और इन दोनों बातों में कोई विरोध नहीं है। आत्म ज्ञान भी हमारा चुनाव है, हिंसा भी हमारा चुनाव है। हम होना चाहें अहिंसक तो अब हमें कोई रोक नहीं सकता। मनुष्य जो भी होना चाहे हो सकता है। मनुष्य का विचार ही उसका व्यक्तित्व है, उसका निर्णय ही उसकी नीयति है, उसकी आकांक्षा ही उसकी अभीप्सा ही उसका आत्मसृजन है इसलिए अब कोई आदमी अपने मन में यह कभी भूलकर भी न सोचे कि वह जो है उसमें वह क्या कर सकता है। क्रोध है तो वह क्या कर सकता है, हिंसा है तो वह क्या कर सकता है, अज्ञान है तो क्या कर सकता है। आदमी को यह कहने का हक नहीं है। जैसे ही आदमी कहता है कि मैं क्या कर सकता हूं, वह यह खबर दे रहा है कि कर सकता है और अपने को समझाने की कोशिश कर रहा है कि क्या कर सकता हूं। यह सवाल ही नहीं है। आदमी जिस दिन कहता है मजबूरी है, मैं क्या कर सकता हूं, हिंसक मुझे होना ही पड़ेगा उस दिन वह यह कह रहा है कि मैं चुन भी रहा हूं और चुनाव की जिम्मेवारी भी छोड़ रहा हूं और हिंसक होने का दोष किसी और के कंधों पर है—प्रकृति के, परमात्मा के कंधों पर छोड़ रहा हूं। जिस आदमी ने अपनी आदमियत् का बोझ किसी और को छोड़ा वह पशुता की दुनिया में वापस गिर जाता है। असल में वह आदमी होने से इन्कार कर रहा है। जो आदमी चुनने से इन्कार कर रहा है वह आदमी होने से इन्कार कर रहा है। वह यह कह रहा है कि नहीं, हम पशु बेहतर हैं जहां न कोई चुनाव है, न कोई जिम्मेवारी है न कोई निर्णय है, न कोई परेशानी है। जो है वह है। हम वापस लौटते हैं। शराब पीकर आदमी पशु में वापस लौट जाता है। हिंसा करके आदमी पशु में वापस लौट जाता है, क्रोध करके आदमी पशु में वापस लौट जाता है। इसलिए क्रोध से भरे

व्यक्ति को देखें तो उसमें सिर्फ आदमियत की रूप रेखा भर दिखाई पड़ती है, आत्मा नहीं दिखाई नहीं पड़ती। हिंसा से भरी आँखें देखें तो उसमें आदमी की आँखें नहीं दिखायी पड़तीं, तत्काल आँखों में एक मेटामाफासिस हो जाती है, आंखें बदल जाती हैं। भीतर से कोई छिपा हुआ पशु तत्काल प्रगट हो जाता है। इसलिए क्रोध में, हिंसा में आदमी पशु जैसा व्यवहार करता है। काटता है, चीखता है, लोंचता है। हां आदमी के नाखून छोटे पड़ गये हैं क्योंकि उनकी बहुत जरूरत नहीं रह गई। जंगली जानवर के पास नाखून हैं जो आपकी हड्डी तक के मांस को बाहर खींच लायें। लाखों वर्ष से आदमी को अब किसी की हड्डी तक के मांस को खींचने की जरूरत नहीं रह गई तो नाखून छोटे हो गये। तो फिर आदमी को छुरी, भाले, बर्छीयां बनानी पड़ीं हैं। वह सब्टीट्यूट हैं जिनसे वह जानवर का काम ले लें क्योंकि नाखून अब उसके पास छोटे पड़ गये हैं। दांत अब उसके पास ऐसे नहीं रहे कि वह किसी के मांस को काटकर बाहर निकाल ले। तो उसने हथियार औजार बनाये, गोलियां बनायीं हैं जो आदमी की छाती में चुभ जाएँ। आदमी ने जितने अस्त्र–शस्त्र खोजे हैं वह अपनी खो गयी पशुता को सब्टीट्यूट करने के लिए परिपूरक करने के लिए खोजें हैं। जो जानवरों के पास है वह हमारे पास नहीं है तो हमें बनाना पड़ा है। निश्चित ही जब हमने बनाया तो हमने जानवरों से बेहतर बना लिया है। किसी जानवर के पास एटम बम है ? किसी जानवर के पास सैकड़ों मील दूर बम फेंकने के उपाय हैं ? नहीं, जानवर के पास बड़े प्रकृति प्रदत्त साधन हैं और आदमी ने अपनी सारी बुद्धिमत्ता का उपयोग करके करोड़ों जानवरों को इकट्ठा करके भी जो न हो सके वह एक आदमी कर सकता है। यह आदमी का अपना चुनाव है। जिस दिन किसी आदमी को यह बात स्पष्ट दिखाई पड़ जाती है कि जो भी मैं हूं उसकी जिम्मेवारी मेरी है, उस दिन परिवर्तन और रूपांतरण शुरू हो जाता है। जिस आदमी को अभी यह ख्याल है कि जो मैं हूं, मेरा कोई बस नहीं, उस आदमी की जिन्दगी में धर्म का द्वार कभी नहीं खुल सकता। उत्तरदायित्व, मैं ही निर्णायक हूं, मेरी नीयति का, इस बात का बोध मनुष्य की जिंदगी को परिवर्तित करता है। इसलिए मैंने कहा कि आत्म अज्ञान के लिए मनुष्य स्वयं जिम्मेवार है। जिम्मेवार इस अर्थों में कि वह तोड़ सकता है और नहीं तोड़ रहा है। मुक्त हो सकता है और नहीं मुक्त हो रहा है।

प्रश्न : आचार्य श्री, कृपया समझायें कि ध्यान साधना में हिंसक वृत्तियों का विर्सजन और उदात्तीकरण अर्थात डिज्यूलूशन और सब्लीमेंशन किस प्रकार घटित होती है।

उत्तर : हिंसा की वृत्ति अकेली वृत्ति नहीं है, हिंसा की वृत्ति के साथ हिंसा के अनेक वेगों का दमन भी संयुक्त है। सप्रेशन भी संयुक्त है। हिंसा की वृत्ति तो है ही, हिंसा करना अकांक्षा भी है लेकिन हजार मौकों पर हिंसा करने का उपाय नहीं होता है। हिंसा करना चाहते हैं लेकिन नहीं कर पाते हैं। संस्कृति है, सभ्यता है, जीवन की व्यवस्था है, परिस्थिति है, प्रतिकूलताएँ हैं। ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है जिसने किसी क्षण में किसी दूसरे को मार डालने का विचार न किया हो। ऐसा आदमी भी खोजना मुश्किल है जिसने किसी क्षण अपने को ही मार डालने का विचार न किया हो। दिन में न किया होगा तो रात सपने में किया होगा। लेकिन सभी आदमी दूसरे को मार नहीं डालते हैं और सभी आदमी आत्महत्याएँ नहीं कर लेते हैं। सोचते हैं, प्रतिकूलताएँ हैं, सम्भव नहीं हो पाता और जब एक बार हिंसा का भाव मन में उठ जाये और प्रयोग न हो पाये तो वृत्ति तो रहती ही है, यह भाव का वेग भी दमित हो जाता है। यह भी इकट्ठा होने लगता है। हिंसा की वृत्ति तो भीतर बनी रहती है और न की गई हिंसाएँ, हिंसा की न गयी भावनाएँ भी संग्रहीत होती चली जाती हैं। एक जन्म की नहीं, अनेकों जन्मों की भी इकट्ठी हो जाती हैं। उस संग्रह को भी हम अपने साथ लेकर चल रहे हैं। वृत्ति तो साथ है, दबाये हुए वेग भी साथ हैं।

वृत्ति रोज नये वेग पैदा करती है और पुराने वेगों का संग्रह बढ़ता चला जाता है और किसी क्षण विस्फोट हो सकता है । इसलिए हिंसा की वृत्ति से जो मुक्ति है उस मुक्ति में दो बातें समझ लेनी जरूरी हैं । हिंसा की वृत्ति का तो विसर्जन होना ही चाहिए, हिंसा के दबे हुए, दबाये गए वेगों का विसर्जन भी जरूरी है । हिंसा की वृत्ति मिटेगी तो मैं आने वाले भविष्य में हिंसा के वेगों को पैदा नहीं करूँगा लेकिन मैंने जो अर्तीत में वेग दबाये हैं उनका विर्सजन, उनका रेचन, उनकी कथार्सिस भी होनी जरूरी है । महावीर ने बहुत सुन्दर शब्द कथार्सिस के लिए प्रयोग किया है। पश्चिम में मनसशास्त्री जिसे कथार्सिस कहते हैं, उसे रेचन कहते हैं। महावीर ने उसे निर्जरा कहा है । वह बहुत अद्‌भुत शब्द है। निर्जरा का अर्थ है विदरिंग अवे निर्जरा का अर्थ है किसी चीज का झड़ जाना । कोई चाज जो इकट्ठी है, बिखर जाना । निर्जरा का अर्थ है अगर ऊपर धूल इकट्ठी हो गई हो तो धूल के कणों को फेंककर अलग कर देना । बहुत वेग हमारे भीतर इकट्ठे हैं । ध्यान में इनकी निर्जरा, इनकी कथार्सिस की जा सकती है । और सिर्फ ध्यान में ही की जा सकती है। और कोई उपाय मनुष्य के दबे हुए वेगों की निर्जरा का नहीं है । ध्यान में कैसे की जा सकती है ।

जब आपके मन में किसी को घूंसा मारने की इच्छा पैदा होती है तब आप एक छोटा सा प्रयोग करके देखेंगे और बहुत हैरान होंगे और यह प्रयोग मैं मजाक में नहीं कह रहा हूं। अमरीका में एक बड़ी वैज्ञानिक प्रयोगशाला इस प्रयोग को आज कर रही है । केलिफोर्निया में एक संस्था है इसालेन इंस्टीट्यूट । शायद अमरीका में एक बहुत कीमती ऋषि आज मौजूद है। उस आदमी का नाम है पर्स । वह जिन लोगों के मन में बड़ी हिंसा है उनकी आँखों पर पट्टी बंधवा देता है और तकिये उनके सामने रख देता है और कहता है कि मारो घूंसे और समझो कि दुश्मन सामने है। जिसे तुम्हें मारना है उसी को मारो । पहले तो आदमी हँसता है कि तकिये को कैसे मारें। लेकिन किसी दूसरे आदमी को मारने में और तकिये को मारने में हाथ को कोई फर्क नहीं पड़ता है । और किसी आदमी को मारने में और किसी तकिये को मारने में खून में जो विष पैदा हो गया है उसके निकलने में भी कोई फर्क नहीं पड़ता है । दूसरा आदमी भी तकिये से ज्यादा और क्या है ? तो पर्स अपने हिंसक मरीज को कहेगा कि मारो तकिये को । पहले वह हँसेगा लेकिन पर्स कहेगा हँसो मत, मारो । वह कहेगा क्या मजाक करते हैं लेकिन पर्स कहेगा छोड़ो मजाक ही सही लेकिन मारो । वह तकिये को मारना शुरू करेगा और थोड़ी ही देर में आसपास में खड़े लोग देखकर हैरान होंगे कि न केवल मारने में उसकी गति आ गयी, न केवल वह तकिये से जूझने लगा, न केवल तकिये से वह दुश्मनी निकाल रहा है। वह तकिये को चीरेगा, फाड़ेगा, मुंह से काट डालेगा । तकिये के टुकड़े-टुकड़े कर देगा और जिन लोगों को भी इन प्रयोगों से गुजरना पड़ा है वे प्रयोग के बाद कहेंगे मन हल्का हो गया है। इतना कभी हल्का भी नहीं था ।

यह पर्स क्या कह रहा है। यह कह रहा है कि तुमने अब तक हिंसा सकारण निकाली है, किसी पर निकाली है। अब तुम हवा पर निकाल लो। किसी पर मत निकालो, क्योंकि जब भी किसी पर निकाली जायगी तो उसकी प्रतिक्रिया होगी। अगर मैं किसी को घूंसा मारूंगा तो यह घूंसा आकाश में खो नहीं जाएगा, यह अंतरिक्ष इसको एबजार्ब नहीं कर लेगा। जिसको घूंसा मारूंगा वह इसका उत्तर देगा। आज देगा, कल देगा, परसों देगा। प्रतीक्षा करेगा लेकिन उत्तर देगा और तब मैं किसी को घूंसा मारूंगा। हो सकता है वह बुद्ध जैसा महावीर जैसा कोई आदमी हो और उत्तर न भी दे तो भी जैसे ही मैं किसी को घूंसा मारूंगा उसके मन में भी प्रतिक्रिया और पश्चाताप होगा और क्रोध ही बुरा नहीं नहीं है, पश्चाताप भी उतना ही बुरा है। क्योंकि पश्चाताप उल्टा हो गया है। पश्चाताप शीर्षासन करता हुआ क्रोध है। पश्चाताप भी उतना ही बुरा है। असल

में पश्चाताप करके आदमी फिर से क्रोध करने की तैयारी के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं करता है। जब एक आदमी रिपेंट करता है और कहता है बहुत बुरा हुआ कि मैंने क्रोध किया, तब वह अपने मन को यह समझा रहा है कि मैं इतना बुरा आदमी नहीं हूं। एक बुरा काम हो गया है यह दूसरी बात है। पश्चाताप करके वह अपने अच्छे आदमी को वापस पुनर्स्थापित कर रहा है। वह रीएस्टेबलिश कर रहा है। अपने पुराने चित्त को अपनी ही आंखों में। और जैसे ही पुर्नस्थापित हो जाएगा, कल फिर घूंसा मारने के लिए तैयार हो जायगा, परसों फिर पश्चाताप, फिर घूंसा। क्रोध और पश्चाताप का एक दुष्ट चक्र घूमता रहेगा। और जब हम किसी व्यक्ति को घूंसा मारते हैं तो न केवल पश्चाताप होता है, बल्कि वह घूंसे का उत्तर देगा, इसकी पुनः तैयारी शुरू हो जाती है। इसलिए हिंसा फिर एक दुष्टचक्र बन जाती है। इसके बाहर निकलना मुश्किल हो जाता है। लेकिन तकिये को अगर एक आदमी घूंसा मार रहा है तो यह कुछ भी नहीं घटता। तकिये को घूंसा मारने में निर्जरा हो रही है। पर्स तकिये को घूंसा मारने को कह रहा है क्योंकि जिस दुनिया में हम रह रहे हैं वह आब्जेक्टिव हो गई है। महावीर २५०० साल पहले थे। वह कहते, हवा को ही घूंसा मार दो, तकिये की क्या जरूरत है। लेकिन हम कहेंगे हवा में घूंसा ? तकिये को तो फिर भी मारने जैसा लगता है। वह आदमी की पीठ जैसा लगता है, पेट जैसा लगता है। तकिये को घूंसा छुयेगा तो ऐसा ही लगेगा कि किसी को छुआ। थोड़ा सा तो तकिया भी उत्तर देगा। दुनिया २५०० साल में महावीर के बाद वस्तुगत हो गयी है। महावीर ने जिस ध्यान की बात की है उस ध्यान में तकिये की भी कोई जरूरत नहीं। मैं भी जिस ध्यान की बात कर रहा हूं, उसमें भी तकिये की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन शायद अमरीका में तकिये के बिना घूंसा मारना और भी मुश्किल हो जायगा। वस्तुगत कुछ तो होना ही चाहिये। आदमी न सही तो तकिया सही। महावीर तो तकिये को भी मारने को मना करेंगे। वह तो अगर कहेंगे पर्स को, तो उससे कहेंगे इसमें भी थोड़ी सी हिंसा हो रही है। यह आदमी तकिये में अपने दुश्मन को प्रोजेक्ट कर रहा है। कोई दुश्मन को प्रोजेक्ट कर रहा है। कोई दुश्मन नहीं है जिसको चोट पहुंच रही है। लेकिन इस आदमी को किसी को मारने का मजा और रस आ रहा है। यह रस भी हिंसा की धारा को थोड़ा बहुत जारी रखेगा। इससे हिंसा की पूर्ण निर्जरा नहीं हो जायगी। इसलिए पर्स की लेबोटेरी से गये लोग दो चार छः महीने बाद फिर वापस आ जायेंगे और कहेंगे हिंसा फिर मन में इकट्ठा हो गयी। अब फिर उनको तकिया चाहिए और फिर उनको मारना पड़ेगा। ध्यान की प्रक्रिया कहती है कि आप किसी की फिक्र छोड़ दें। सब्जेक्टिव वायलेंस कर लें। आब्जेक्टिव वायलेंस का मतलब अपने साथ हिंसा करना नहीं, सब्जेक्टिव वायलेंस का मतलब सिर्फ हिंसा को हो जाने दें। बिना किसी आब्जेक्ट के, बिना किसी विषय के, बिना किसी वस्तु के। एक आदमी ध्यान में चीख मारकर चिल्लाये, घूंसे मारे, नाचे कूदे तो उसके भीतर जो हिंसा के दबे हुए वेग हैं उनकी निर्जरा होती है, वे गिर जाते हैं। एक घंटे भर के किसी भी दिन प्रयोग के बाद आप इस बात का अनुभव कर सकते हैं कि आपके भीतर के दबे हुए वेग उड़ गए हैं, आप हल्के होकर कमरे के बाहर आ गए हैं। उस दिन भर, आप क्रोध न कर पायेंगे उतनी आसानी से जितनी आसानी से कल किया था, उतनी आसानी से किसी को घूंसा न बांध लेंगे जितनी आसानी से सदा बांधा था। वे ही कारण जो कल आपकी आँखों को लाल खून से भर देता है आज आपकी आँखों को झील की तरह नीला ही छोड़ जायेंगे और एक हँसी भी अपने पर आनी शुरू होगी कि जो हिंसा ऐसे ही निर्जरा हो सकती थी उसे अकारण ही मैंने दूसरे को पीड़ा देकर दुष्ट चक्र निर्मित किये, विसियस सर्किल बनाये।

महावीर एक गांव के पास खड़े थे और कुछ लोगों ने आकर उन्हें बहुत पीटा। किसी ने उनके कान में खीले ठोंक दिये वे खड़े देखते रहे। पीछे से किसी ने पूछा, आपने कुछ भी न कहा ? आप कुछ तो बोलते, इतना तो कहते कि अकारण मुझे क्यों मार रहे हो ?

तो महावीर ने कहा, अकारण वे नहीं मार रहे थे, उनके भीतर मारने की बात का जरूर ही कोई कारण रहा होगा। हो सकता है मुझसे सम्बन्धित न हो कारण लेकिन उनके भीतर तो कारण रहा ही होगा और मैंने सोचा कि वे मुझे ही मार लें तो बेहतर है। वे किसी दूसरे को मारेंगे तो बिना मार का उतर पाये वापस न लौटेंगें। उनकी हिंसा की निर्जरा हो जाय तो मुझसे बेहतर आदमी उन्हें खोजना मुश्किल है। महावीर ने तकिये की तरह ही व्यवहार किया उन लोगों के साथ। ध्यान में दबे हुए समस्त वेगों को निर्जरा होती है, वे चाहें हिंसा के हों, चाहे क्रोध के हों, चाहे काम के हों, चाहे लोभ के हों। ध्यान में समस्त दबे वेगों की निर्जरा होती है और जब वेग की निर्जरा हो जाय, जब सप्रेस, दबी हुई शक्तियां बिखर जायं तो वृत्ति से छुटकारा पाने में बड़ी आसानी हो जाती है। जब किसी के घर की तिजोरी का सारा धन फिक जाय तो तिजोरी को फेंकने में बहुत देर नहीं लगती। तिजोरी को तो आदमी बचाता ही इसलिए है कि उसके भीतर जो धन इकट्ठा है, अगर धन तिजोरी का सारा बांट दिया गया हो तो तिजोरी को दान करने में बहुत कठिनाई नहीं पड़ती। हिंसा की वृत्ति से छुटकारा पाना उतना कठिन नहीं पड़ेगा, हिंसा के वेग जो हिंसा की वृत्ति को तिजोरी बनाकर बैठ गये हैं, उनसे छुटकारा पाना ही पहला सवाल है और जिस दिन सारे वेग मुक्त हो जाते हैं उस दिन हिंसा अपनी नग्नता में, अपनी टोटल नैकेडनेस में दिखायी पड़ती है और जब कोई व्यक्ति हिंसा को उसकी पूरी नग्नता में देखने में समर्थ हो जाता है तो एक क्षण भी हिंसक नहीं रह सकता क्योंकि हिंसा को उसकी पूरी नग्नता में देखना उससे मुक्त हो जाना है। वह इतनी पीड़ा है, वह इतनी कुरूपता है, वह इतनी गंदगी है कि उसमें कोई एक क्षण भी रुकने को राजी नहीं होगा। वह ऐसा ही हिंसा कि उसकी पूरी नग्नता में देखना, जैसे किसी के घर में आग लग गयी हो और लपटों में घर घिर जाय और फिर कोई आदमी जब लपटों की देख ले तो एक भी क्षण उस घर में रुकना संभव न होगा। वह छलांग लगाये और बाहर निकल जाय। ठीक ऐसे ही हिंसा की लपटों में घिरा आदमी बाहर कूद पड़ता है लेकिन हिंसा की लपटें दिखायी नहीं पड़ती हैं क्योंकि हिंसा की वृत्ति और स्वयं के बीच में न मालूम कितनी वृत्तियां हैं दबे हुए वेगों उन वेगों के कारण हिंसा की वृत्ति का दर्शन नहीं हो पाता। उसके कारण नैकेड वायलेंस दिखायी नहीं पड़ती उसके कारण हमेशा ही हमें यही दिखायी पड़ता है कि हिंसा भी हमारी मित्र है क्योंकि हिंसा का हमें उपयोग करना है। कल कोई दुश्मन होगा, कल हमला करेगा तो जवाब कैसे देंगे। वे जो बीच में दबे हुए वेग हैं उनकी लम्बे धुएं के पर्त के कारण हिंसा की नग्नता दिखायी नहीं पड़ती। ध्यान वेगों से मुक्ति दिलाकर हिंसा का आमना सामना, एनकाउण्टर करा देता है और जिस आदमी ने भी हिंसा को देख लिया वह अहिंसक हो गया, जिस आदमी ने भी हिंसा को पहचान लिया उसके हिंसक होने के फिर उपाय नहीं रह जाते हैं। कोई भी आदमी जानकर नर्क में उतरने को राजी नहीं होता और अगर कभी कोई नर्क में उतरता है तो वह नर्क को समझकर ही उतरता है। कोई आदमी कभी आग की लपटों में उतरता नहीं है, अगर उतरता है तो आग की लपटों को स्वर्ग का द्वार समझकर ही उतरता है।

ध्यान विसर्जन है, निर्जरा कथार्सिस है। ध्यान का अर्थ है, आपके भीतर जो हो रहा है उसे अकारण प्रगट हो जाने दें, किसी पर नहीं, शून्य में। उसे शून्य को समर्पित कर दें। अब क्रोध आये तो एक छोटा सा प्रयोग करके देख लें। जब क्रोध आये तो द्वार बन्दकर लें और खाली कमरे में क्रोधित हो जायं। पूरा क्रोध कर लें खाली कमरे में। बहुत हंसी आयेगी क्योंकि बड़ा अजीब मालूम पड़ेगा, एब्सर्ड मालूम पड़ेगा। सदा क्रोध दूसरे पर किया है लेकिन एक बार अकेले में करके देख लें और तब दूसरे पर करना मुश्किल होता जायेगा। पहली दफे अकेले में हंसी आयेगी और दूसरी दफे से दूसरे पर करने में हंसी आने लगेगी। क्योंकि जो पागलपन आप अकेले में भी नहीं कर सकते हैं, और पागलपन अकेले में भी हंसी लाता है वह भी चार आदमियों के सामने करके लोगों के मन में आपकी क्या तस्वीर बनाता होगा, इसकी कल्पना कमरे में आइना रखकर और दिल खोलकर क्रोध करके देख लें। तोड़ना ही हो तो आइने को तोड़

देना और उस सारे विध्वंस के बीच खड़े होकर देखना कि आपके भीतर किस तरह के जहर हैं इनकी निर्जरा होगी, ये गिर जायेंगे और इनके गिरने के बाद आप अपनी हिंसा को देखने में समर्थ हो सकते हैं। हिंसा से मुक्ति के लिए हिंसा का दर्शन अनिवार्य है।

प्रश्न : आचार्य जी, आपने कहा है काम क्रीड़ा में सूक्ष्म हिंसा है, लेकिन क्या संभोग दो व्यक्तियों के परस्पर संपर्क से बायोलाजिकल सुख पैदा करने का आयोजन नहीं है ? क्योंकि इस घटना के सुख में दोनों भागीदार होते हैं इसलिए क्या इसमें म्युचुअल, परस्पर सहानुभूति व प्रेम आधार नहीं है ?

उत्तर : ऋषभ से लेकर पार्श्व तक धर्म को चार सूत्र दिये गये थे। कहें कि धर्म का रथ चार पहियों वाला था, या कहें कि धर्म के पास चार पैर थे। चतुर्याम था धर्म। महावीर ने एक पांचवां सूत्र जोड़ा ब्रह्मचर्य। महावीर के पहले पार्श्व तक किसी ने ब्रह्मचर्य को धर्म का सूत्र नहीं बताया था। यह बड़े मजे कि बात है और काफी समझ लेने की बात है। यह आश्चर्यजनक मालूम होगा कि ऋषभ से लेकर पार्श्व तक के चिन्तकों ने, अनुभवियों ने ब्रह्मचर्य को धर्म का सूत्र नहीं बताया क्योंकि पार्श्व तक यही समझा जाता रहा कि जो अहिंसा को पाल लेगा उसके जीवन में ब्रह्मचर्य अनायास ही उतर जायेगा क्योंकि काम अपने आप में एक गहरी हिंसा है, सैक्स अपने आप में एक गहरी हिंसा है। काम को हिंसा क्यों कहा जाता है ? इस संबंध में दो चार सूत्र समझने उपयोगी हैं और महावीर ने क्यों ब्रह्मचर्य को अलग सूत्र दिया यह भी थोड़ा सोच लेना उचित होगा।

महावीर का नाम अहिंसा के साथ गहराई से जुड़ा है। इतना कोई दूसरा नाम नहीं जुड़ा है लेकिन आश्चर्य होगा आपको यह जानकर कि महावीर को अहिंसा से ब्रह्मचर्य को अलग कर देना पड़ा और कर देने का कुल कारण इतना है कि महावीर जिन लोगों के बीच बात कर रहे थे वे बहुत गहरी अहिंसा समझने में असमर्थ थे, वे बहुत ही उथली अहिंसा समझ पाते थे। इतनी उथली अहिंसा में काम समझ नहीं आता। अहिंसा जब बहुत गहरी होती है तभी पता चलता है कि काम वासना भी हिंसा का एक रूप है। लेकिन पार्श्व तक चर्चा नहीं करनी पड़ी क्योंकि अहिंसा बड़े गहरे अर्थों में ली जाती रही। क्यों ?

दो तीन बातें है। एक तो जैसा मैंने कहा, जैसे ही किसी व्यक्ति को दूसरे की चाह पैदा होती है, वह आदमी दुखी है, इसका सबूत हो गया। जैसे ही कोई व्यक्ति कहता है कि मेरा सुख दूसरे से मिलेगा वैसे ही वह व्यक्ति दुखी है यह तय हो गया और जो अपने से ही सुख नहीं पा सका, वह दूसरे से सुख पा सकेगा यह असंभव है। भ्रम पा सकता है सुख नहीं पा सकता, धोखा पा सकता है, तथ्य, सत्य नहीं पा सकता, सपने देख सकता है लेकिन जाग जाय तो रोयेगा। दूसरों की आकांक्षा ही इस बात का सबूत है कि अभी सुख का सूत्र नहीं मिला और दूसरों की आकांक्षा के बिना तो काम नहीं हो सकता, सेक्स नहीं हो सकता। वह दूसरे की आकांक्षा में छिपा है इसलिए भी काम हिंसा है और इसलिए भी कि एक व्यक्ति के पास जो वीर्य कण हैं वे जीवित हैं। आज पृथ्वी पर साढ़े तीन अरब लोगों की संख्या है। एक साधारण आदमी के जीवन में जितने वीर्य कण बनते हैं उतने वीर्य कणों से इतनी संख्या पैदा हो सकती है सारी पृथ्वी की, और एक व्यक्ति जीवन भर इन वीर्य कणों का काम के लिए उपयोग करता रहता है। संभोग में जितने वीर्य कण शरीर के बाहर जाते हैं, दो घण्टे के भीतर भर जाते हैं। अगर एकाध वीर्य कण स्त्री के अन्डे तक पहुंच गया तो वह नयी जीवन की यात्रा पर निकल जाता है और शेष वीर्य कण दो घण्टे के भीतर मर जाते हैं। एक संभोग में लाख वीर्य कण मरते हैं। ये वीर्य कण बीज के रूप में जीवन हैं। इनमें से प्रत्येक वीर्यकण मनुष्य बन सकता है। इसलिए एक संभोग में लाखों व्यक्तियों की हत्या तो हो ही रही है। यह लाखों व्यक्ति की हत्या हिंसा है।

तीसरी बात और ख्याल में ले लेनी जरूरी है । जिस एक व्यक्ति के पैदा होने की संभावना है, अहिंसा को जिन्होंने बहुत गहरे में जाना है वे कहेंगे कि जिसको तुमने जन्म दिया उसे तुमने मरने के लिए पैदा किया है । असल में जन्म मरने की शुरूआत है । जन्म एक छोर है मौत दूसरी छोर होगी । तो पिता जन्म के लिए ही जिम्मेवार है तो आधी जिम्मेवारी ले रहा है । मरने की जिम्मेवारी किसकी होगी ? मां अगर जन्म देने की ही जिम्मेवारी ले रही है तो आधी जिम्मेवारी ले रही है । मरने की जिम्मेवारी किसको होग । यह तो बड़ा बेईमानी का सौदा हुआ कि जन्म की जिम्मेवारी माँ ले ले और पिता ले ले और मरने की ? असल में जन्म एक छोर है, मौत उसी का दूसरा छोर है इसलिए पूर्ण अहिंसक चित्त पिता और माँ बनने की जिम्मेवारी लेने में असमर्थ होता है । उसका गहरा कारण है । वह किसी की मृत्यु का कारण नहीं बन सकता और जन्म देना किसी कि मृत्यु का कारण बनना है । भला सत्तर साल बाद वह मृत्यु हो इस टाइम गैप से कोई फर्क नहीं पड़ता, समय के अंतराल से कोई फर्क नहीं पड़ता है । तो कामक्रीड़ा में जो वीर्यकण दो घण्टे बाद मर जायेंगे वह मर ही जायेंगे, जो वीर्यकण बचेगा वह भी सत्तर वर्ष बाद, अस्सी वर्ष बाद मर जायेगा । काम क्रीड़ा जन्म के रूप में मृत्यु को ही जन्माती चली जाती है लेकिन जीवन का सारा धोखा यही है कि पहले दरवाजे पर लिखा होता है मृत्यु । जब आप भीतर प्रवेश करते हैं तो जन्म दरवाजा देखकर प्रवेश करते हैं और जब बाहर निकल जाते हैं तब मृत्यु के दरवाजे से निकल जाते हैं । जीवन का धोखा यही है कि पहले दरवाजे पर एण्ट्रेंस पर लिखा होता है सुख और पीछे के दरवाजे पर लिखा होता है दुख । जब प्रवेश करते हैं तब सुख की आकांक्षा में और जब बाहर निकलते हैं तो फ्रस्ट्रेटेड, दुख से विक्षिप्त और पागल ।

मैंने एक मजाक सुनी है । मैंने सुना है कि न्यूयार्क में एक आदमी ने बहुत सी अजीब चीजें इकट्ठी कर ली थीं और एक अजायब घर बना रखा था । लेकिन चीजें इतनी अजीब थीं कि जो भी आदमी अजायब घर में देखने आते थे वे देखते ही रहते थे, निकलने को राजी नहीं होते थे । अब जब तक वे न निकल जायें तब तक दूसरे टिकट लेने वाले द्वार पर खड़े थे, उनके आने का सवाल न होता । तो बड़ी मुश्किल हो गयी थी । आखिर भीतर के लोगों को बाहर निकलना ही पड़ेगा, क्योंकि दरवाजे पर दूसरे लोग दस्तक दे रहे हैं कि अब उनको भीतर आने दिया जाय और जो भीतर आता, वह बाहर निकलता ही नहीं । तो चीजें संग्रहीत करने वाले आदमी ने एक कारीगरी की, एक कुशलता की । शायद वह कुशलता उसने प्रकृति से ही सीखी होगी । कोई १०–१२ कमरे थे उस अजायब घर के । एक कमरे से दूसरे कमरे में जाने की तख्ती लगी थी और तीर बना था । पहले कमरे पर तीर लगा होता था, और भी अद्भुत चीज है और तीर अगले कमरे में ले जाता था और बारहवें कमरे पर सबसे बड़ा तीर लगा था और लिखा था, और भी सबसे अद्भुत चीजें, जो न कभी देखी हैं, न कभी सुनी हैं और जब आदमी उसमें से निकलता था तो सीधा सड़क पर पहुंच जाता था और पीछे लौटने का उपाय नहीं था । दरवाजे पर संतरी खड़ा था । फिर लौटना हो तो टिकट लेकर पहले दरवाजे से ही वापस लौटना पड़ता था । जिस दिन से यह तख्ती लगाई गयी उस दिन से उस म्यूजियम में कभी भीड़ नहीं हुई, क्योंकि वह और भी अद्भुत चीजें देखने आदमी सड़क पर पहुंच जाता ।

जन्म की तख्ती सामने के द्वार पर है, मृत्यु की तख्ती पीछे के द्वार पर है । अहिंसा को जिन्होंने गहरे में जिया है, जिन्होंने जाना है वह यह भी कहेंगे कि जन्म देना भी हिंसा है । इन तीन कारणों से काम क्रीड़ा हिंसा का ही एक रूप है । और दुखी मनुष्य, जैसे मैंने पहले कहा, दूसरे से सुख पाना चाहता है, लेकिन क्या कभी आपने सोचा कि वह जो दूसरा आदमी आपसे काम क्रीड़ा में संलग्न हो रहा है वह भी दुखी है और आपसे सुख पाना चाहता है । ये दो भिखमंगे एक दूसरे से भीख मांग

रहे हैं। मैंने सुना है, एक गाँव में दो ज्योतिषी थे। वे रोज सुबह अपने ज्योतिष का काम करने बाजार जाते थे तो रास्ते में जब मिल जाते तो एक दूसरे को अपना हाथ दिखा लेते थे कि क्या ख्याल है, आज धंधा कैसा चलेगा ? हम सारी जिन्दगी ऐसा ही कर रहे हैं। हम सब दुखी हैं और एक दूसरे से सुख मांग रहे हैं। जिससे मैं सुख मांगने गया हूं वह मुझसे सुख मांगने आया है। स्वभावतः इन दो दुखी आदमियों का अन्तिम परिणाम दुगुना दुख होगा, सुख नहीं। दुख दुगुना हो जायेगा, बल्कि दुगुना कहना ठीक नहीं क्योंकि जिन्दगी में जोड़ नहीं होते, गुणनफल होते हैं। यहां चीजें जुड़ती नहीं, गुणित हो जाती हैं। यहां चार और चार मिलकर आठ नहीं होते, सोलह हो जाते हैं। जिंदगी में जब दो आदमी दुखी मिलते हैं तो सिर्फ उनका दुख जुड़ नहीं जाता, उनका दुख कई गुना हो जाता है। मैं दूसरों को दुख देने का कारण बना, हिंसा है और जब तक मैं दुखी हूं तब तक मेरे सभी संबंध, जो मैं निर्मित करूंगा दुख देने वाले ही होंगे। इसलिए अहिंसक कहेगा, जब तक हिंसा है चित्त में, दुख है चित्त में, तब तक संग ही मत बनाओ, संबंध मत बनाओ। क्योंकि सब संबंध दुख को ही फैलायेंगे। असंग हो जाओ, संबध के बाहर हो जाओ जिस दिन आनंद भर जाय उस दिन संबंधित हो जाने के लिए कठिनाई यही है जिन्दगी की कि जो दुखी हैं वे संबंधित होना चाहते हैं, जो आनंदित हैं उन्हें सबंध का पता ही नहीं रह जाता। ऐसा नहीं कि वे संबंधित नहीं होते लेकिन उन्हें पता नहीं रह जाता, कोई आकांक्षा नहीं रह जाती। अगर उनसे लोगों के संबंध भी बनते हैं तो सदा वन वे ट्राफिक होते हैं। दूसरे लोग ही उनसे संबंधित होते हैं। वे तो असंग, अनरिलेटेड खड़े रह जाते हैं। दूसरे ही उन्हें छूते हैं, वे दूसरे को नहीं छू पाते। हाँ, उनका आनन्द जरूर जो उनके निकट आता है उस पर बरसता रहता हैं। वह वैसे ही बरसता रहता है, जैसे सूरज की किरणें बरसती हैं। वह वैसे ही बरसता रहता है जैसे वृक्षों में खिले हुए फूल बरसते रहते हैं, किसी के लिए नहीं, वृक्ष के पास बहुत हो गये हैं इसलिए—ओव्हर फ्लोइंग है, चीजें बाढ़ में आ गयी हैं और बरसती रहती हैं। दुखी आदमी संबंध खोजता है और जिनसे संबंध खोजता है सिर्फ उन्हें दुखी छोड़ पाता है। किस आदमी ने संबध बनाकर सुख पाया ? किस आदमी ने संबंधित होकर किसको सुख दिया ? कोई नहीं दे पाता। यह सारी पृथ्वी दुखी लोगों की पृथ्वी है और यह सारी पृथ्वी दुखीं लोगों के प्रयास से सुख पाने के और सुख देने के प्रयास से करोड़ गुना दुखी होकर नर्क बन गयी है। काम क्रीड़ा हिंसा का एक रूप है क्योंकि वह दुखी चित्त की खोज है। अहिंसा आनंद चित्त का बहाव है। हिंसा दुखी चित्त का, विक्षिप्त, रोगों का दूसरों में संक्रमण इसलिए पार्श्व तक ब्रह्मचर्य को अलग सूत्र ही नहीं गिना, महावीर को गिनना पड़ा क्योंकि महावीर जिस समाज में पैदा हुए वह एक डिकाडेंट सोसाइटी थी। वह एक मरता हुआ समाज था। महावीर जिस समाज में पैदा हुए वह भारत के शिखर पर पहुंचा हुआ समाज था और जब उन्नति के शिखर पर कोई समाज पहुंच जाता है तो पतन शुरू हो जाता। सब शिखर पर पहुंचे हुए समाज पतित होते हुए समाज होते हैं। जैसे अमरीका आज एक डिकाडेंट सोसाइसी है। अब एक खिखर छू लिया है। अब पतन, सब चीजों में बिखराव होगा। माहवीर जिस समय भारत में पैदा हुए उस समय विशेषकर बिहार अपनी उन्नति के स्वर्ण शिखर पर था, सब तरफ स्वर्ण था, सब तरफ उन्नति ऊँचाई पर थी। सब चीजें सड़ रही थीं और गिर रही थीं। इस समाज के बीच महावीर जैसे व्यक्ति को अहिंसा की बात करनी पड़ी। इस बात को बहुत गहरे तक ले जाना मुश्किल था क्योंकि जो कान थे वे बहरे थे। ऋषभ को जो लोग मिले थे वे सीधे सरल लोग थे। विकासमान समाज था, डिकाडेंट नहीं। एवाल्व हो रहा था, विकसित हो रहा था, लोग बच्चों की तरह भोले थे, सरल थे, सीधे थे। उनसे बहुत गहरी बात की जा सकती थी और वे गहरी बात सुन सकते थे। अभी बहरे नहीं हो गये थे, अभी सभ्यता और संस्कृति के शोर ने उनके कानों को फोड़ नहीं डाला। अभी उनकी आत्माओं में बच्चों की सरलता और ताजगी थी, अभी वहां गीत पहुंच सकते थे, अभी वहां स्वर पहुंच सकते थे इसलिए ब्रह्मचर्य की बात ही नहीं

को क्योंकि अहिंसा में ही ब्रह्मचर्य अपने आप समाविष्ट हो जाता था। लेकिन महावीर को सूत्र पांच कर देने पड़े। चार की जगह एक सूत्र और बढ़ाना पड़ा क्योंकि यह समझाना लोगों को मुश्किल हुआ कि अहिंसा इतनी गहरी हो सकती है कि काम, सैक्स भी हिंसा हो जाय और इसीलिए तो महावीर के आधार पर जो विचार की परंपरा अहिंसा के उन गहराइयों को नहीं छू पायी जो ऋषभ और पार्श्व के मन में थी। महावीर के आधार पर जो विचार चला उसके लिए अहिंसा चींटी मत मारो, पानी छान के पियो, हिंसा मत करो, किसी को मारो मत, दुख मत दो, मांस मत खाओ इस तरह की ऊपरी अहिंसा बनकर रह गई। इसके जिम्मेदार महावीर नहीं, महावीर के आसपास जो थे, जिनसे उन्हें बात करनी थी वे लोग जिम्मेवार हैं और वह परम्परा बहुत साधारण होकर रह गयी। सोचें, कैसे अद्भुत लोग रहे होंगे ऋषभ और पार्श्व, जिन्होंने ब्रह्मचर्य की बात ही नहीं की क्योंकि उन्होंने कहा, अहिंसक हो जाओ, तो ब्रह्मचर्य तो हो ही जायगा। उसकी कोई अलग से व्यवस्था देने की जरूरत नहीं है।

कनफ्यूसस एक बार लाओत्से के पास गया तो लाओत्से ने कहा, तुम्हें पता है वह जमाना, जब लोग इतने धार्मिक थे कि धर्म की कोई बात ही नहीं करता था। धर्म की बात सिर्फ अधार्मिक समाज में करनी पड़ती है। धार्मिक समाज में धर्म की बात की कोई भी जरूरत नहीं है। तो लाओत्से ने कहा, जमाना था जब लोग धार्मिक थे, तब धर्म की बात करनी व्यर्थ थी क्योंकि जब लोग धार्मिक हों तो धर्म की बात नहीं करनी पड़ती है। बीमार आदमी के सिवाय स्वास्थ्य की चर्चा और कोई भी नहीं करता है। अक्सर बीमार आदमी खुद ही धीरे-धीरे डाक्टर हो जाते हैं स्वास्थ्य की चर्चा करते-करते। बीमार आदमी ज्यादा स्वास्थ्य की पत्रिकायें पढ़ते हैं, नेचरोपैथी की किताबें पढ़ते हैं। बीमार आदमी स्वास्थ्य की बहुत चर्चा करता है। उसको बेचारे को बीमारी इतनी सचेतन बनाये रखती है कि स्वास्थ्य की चर्चा से मन को भुलाये रखता है। नैतिक समाज नीति की चर्चा करते हैं, कामुक समाज ब्रह्मचर्य की चर्चा करते हैं, पतित समाज उत्थान की चर्चायें करते हैं. गरीब समाज धन की चर्चायें करते हैं। जो नहीं होता, हम उसकी ही चर्चा करते हैं। महावीर के वक्त में हिंसा बहुत थी, अहिंसा बहुत गहरी नहीं जा सकती थी इसलिये ब्रह्मचर्य की चर्चा अलग करनी पड़ी। ऋषभ को अहिंसा की चर्चा ही काफी हुई और शायद ऋषभ के पहले अहिंसा की चर्चा की भी जरूरत न रही हो। क्योंकि अहिंसा की चर्चा भी तभी होती है जब हिंसा जोर से चित को पकड़ लेती है। इसलिये मैंने कहा कि काम भी हिंसा का एक रूप है और अकाम अहिंसा का खिल जाना है।

प्रश्न : आचार्य श्री, हम एक बड़ी मुसीबत में पड़ गये हैं और वह मुसीबत हमारे लिये यह है कि अभी तक हमारे लिये यह धारणा रही थी कि सहानुभूति सेम्पैथी यह एक अहिंसा का अंग है और हम बहुत दिनों से बराबर इसे मानते रहे हैं। लेकिन पंचमहाव्रत के अंतर्गत आपने अहिंसा के संदर्भ में बताया कि सहानुभूति में हिंसा छिपी है क्योंकि इसमें दूसरा मौजूद है। फिर आपने इस चीज को और आगे बढ़ाया और आपने समानभूति का उदाहरण देते हुए परमहंस स्वामी रामकृष्ण का जिक्र किया और जिसमें आपने यह भी बताया कि एक किसान पर जब कोड़े लग रहे थे, उस समय उस कोड़े के निशान रामकृष्ण परमहंस की पीठ पर दिखायी पड़ रही थी। तो यह सहानुभूति और समानभूति में हिंसा वृत्ति के संदर्भ में क्या सूक्ष्म भिन्नता है यह बताने की कृपा करें और साथ ही साथ यह बताने की कृपा करें कि जिसे आपने समानुभूति का नाम दिया है वह भी मानसिक घटना है या आध्यात्मिक तल की चीज है।

उत्तर : सहानुभूति, सिम्पैथी विशेषतः बड़ी मूल्यवान कीमती चीज समझी जाती रही है। नहीं, सहानुभूति का अर्थ है कोई आदमी दुखी है और आप उसके दुख में दुख प्रगट करते हैं, दुखी होते हैं।

सहानुभूति का अर्थ है सह अनुभूति, दूसरे के साथ-साथ अनुभव करना। लेकिन जो आदमी दूसरे के दुख में दुख अनुभव करता है वह आदमी दूसरे के सुख में कभी सुख अनुभव नहीं कर पाता है। अगर किसी के बड़े मकान में आग लग जाय तो आप दुख प्रगट करते हैं लेकिन किसी का बड़ा मकान बन जाय तो सुख नहीं प्रगट कर पाते। इस बात पर समझ लेना जरूरी है। इसका मतलब क्या हुआ ? इसका मतलब यह हुआ कि सहानुभूति एक धोखा है। सहानुभूति तभी सच्ची हो सकती है जब दूसरे के दुख में दुख अनुभव हो और दूसरे के सुख में अनुभव हो लेकिन दुख में तो दुख अनुभव हम कर पाते हैं या दिखा पाते हैं, सुख में सुख अनुभव नहीं कर पाते। इसलिए कर पाते हैं कहना ठीक नहीं होगा, दिखा पाते हैं कहना ठीक होगा। जब दूसरा दुखी होता है तो हम दुख प्रगट कर पाते हैं। अगर हम दूसरे के सुख में भी सुखी हो पायें तब तो हमारा दुख प्रगट करना वास्तविकता होगा, अन्यथा दूसरे के दुख में भी हमें थोड़ा सा रस आता है। दूसरे के दुख में हमें थोड़ा मजा आता है। दूसरे के दुख में भी हम रसभोर होते हैं। इसलिए जब आप किसी दूसरे के दुख में दुख प्रगट करने जायें तब जरा अपने भीतर टटोलकर देखना कि कहीं आपको मजा तो नहीं आ रहा है। एक तो मजा यह आता कि हम सहानुभूति प्रगट करने वाले हैं और दूसरा आदमी सहानुभूति लेने की स्थिति में पड़ गया है। जब कोई दूसरा आदमी सहानुभूति लेने की स्थिति में पड़ जाता है तो याचक हो जाता है और आप मुफ्त में दाता हो जाते हैं। दूसरा आदमी जब सहानुभूति लेने की स्थिति में पड़ जाता है तो आप विशेष और वह दीन हो जाता। और अपने भीतर आप खोजेंगे तो अपने इस दुख प्रगट करने में भी आपको एक रस की उपस्थिति मिलेगी। मिलेगी ही। इसलिए मिलेगी कि अगर न मिले तब आप दूसरे के दुख में पूरी तरह दुखी हो पायेंगे और दूसरे के सुख में तो ईर्ष्या भर जाती है, जेलसी भर जाती है, जलन भर जाती है। दूसरा पहलू इस बात की खबर देता है कि दूसरे के दुख में हम दुखी नहीं हो सकते लेकिन इसी को हम सहानुभूति कहते रहे हैं। इसी को मैं सहानुभूति कहके बात कह रहा हूं। इसलिए मैंने दूसरा शब्द चुनना उचित समझा, वह है समानभूति, एम्पैथी। सहानुभूति एक तो झूठी होती है, वंचना होती है और अगर हम यह समझ लें कि किसी आदमी कि सहानुभूति सच्ची ही हो, वह दूसरे के दुख में दुख अनुभव करे और दूसरे के सुख में सुख अनुभव करे तो हिंसा ही रहती है, अहिंसा नहीं हो पाती। झूठी हो तब तो निश्चित ही हिंसा होती है, सच्ची हो तब भी हिंसा हो होती है, सच्ची हो तब भी हिंसा ही होती है अहिंसा नहीं हो पाती। क्योंकि जब तक दूसरा मौजूद है तब तक अहिंसा फलित नहीं होती। अहिंसा अद्वैत की अनुभूति है, अहिंसा इस बात का अनुभव है कि वहां दूसरा मैं ही हूं। जब दूसरा दुखी हो रहा है तब ऐसा अनुभव हो कि दुखी हो रहा है और मैं भी दुख अनुभव कर रहा हूं। अगर झूठा है तब तो हिंसा होगा ही। अगर सच्चा ही है तो भी मैं है और जब दूसरा दूसरा है। दोनों के बीच का सेतु नहीं टूट गया है। और जहां तक दूसरा दूसरा है वहां तक अहिंसा संभव नहीं है। दूसरे को दूसरा बनाना भी हिंसा क्यों है ? क्योंकि जब तक मैं दूसरे को दूसरा जान रहा हूं तब तक अज्ञान में जी रहा हूं। दूसरा दूसरा है नहीं। समानुभूति का अर्थ है कि दूसरे को दुख हो रहा है, ऐसा नहीं, मैं ही दुखी हो गया हूं। दूसरा सुखी हो गया है, ऐसा नहीं, मैं ही सुखी हो गया हूं। ऐसा नहीं कि आकाश में चांद प्रकाशित हो रहा है। ऐसा कि मैं ही प्रकाशित हो गया हूं। ऐसा नहीं कि सूरज निकला है, बल्कि मैं ही निकल आया हूं। ऐसा नहीं कि फूल खिले हैं, बल्कि मैं ही खिल गया हूं। एम्पैथी का अर्थ है अद्वैत। समानुभूति का अर्थ है एकत्व। तो ये तीनों स्थितियां हुईं। झूठी सहानुभूति, फाल्स सिम्पेथी भी हिंसा है, सच्ची सहानुभूति भी हिंसा का बहुत सूक्ष्मतम रूप है। और समानुभूति वह अहिंसा है। हिंसा हो या हिंसा का सूक्ष्म रूप हो सच्ची सहानुभूति हो, झूठ सहानुभूति हो वह सब मानसिक तल की घटनाएँ हैं। सहानुभूति, सिम्पैथी आध्यात्मिक घटना है। मन के तल

पर हम कभी एक नहीं हो सकते मेरा मन अलग है, आपका मन अलग है। मेरा शरीर अलग है, आपका शरीर अलग है। शरीर और मन के तल पर ऐक्य असंभव है, हो नहीं सकता। सिर्फ आत्मा के तल पर ऐक्य संभव है। क्योंकि आत्मा के तल पर हम एक हैं ही। जैसे एक घड़े को हम पानी में डुबा दें, नदी में बहती हुई, भर जाये घड़े में पानी तो घड़े के भीतर पानी और घड़े के पानी बाहर एक ही है। सिर्फ बीच में एक घड़े की मिट्टी की दीवार है जो टूट जाय तो पानी एक हो जाये।

मन और शरीर की एक दीवाल है जो दूसरे से मिलने से रोकती है, जो दूसरे के साथ एक नहीं होने देती। हम सब घड़े हैं मिट्टी के चेतना के बड़े सागर में। घड़े तो अलग होंगे लेकिन घड़े के जो भीतर है वह अलग नहीं है और जो अहिंसा को अनुभव करता है या जो आत्मा को अनुभव करता है वह अनुभव कर लेता है कि घड़े कितने ही अलग हों घड़े के भीतर एक ही विराजमान है। वह एक का अनुभव अहिंसा है। इसलिए सहानुभूति नहीं हो सकती है। सहानुभूति में दूसरा जरूरी है। इसमें सहानुभूति हो सकती है। दूसरा इसमें नहीं बचा है। सहानुभूति चित्त और मन के पार है, वह बियोन माइंड है। वह मन के भीतर, मन के नीचे नहीं, मन के ऊपर और मन के पार है। यह जो मन के पार घटना घटती है यही आध्यात्मिक है। सिर्फ आध्यात्मिक कह सकता हैं वही जो तुम हो वही मैं हूं। सिर्फ आध्यात्मिक कह सकता है कि सूरज में जो जल रही है ज्योति वही छोटी सी मिट्टी के दिये में भी जल रही है। सिर्फ आध्यात्मिक कह सकता है कि कण में जो है वही विराट में भी है। सिर्फ आध्यात्मिक कह सकता है कि बूंद और सागर एक ही चीज के दो नाम हैं। सहानुभूति का अर्थ है बूंद और सागर एक है और जिसने एक बूंद को भी जान लिया उसे सागर को जानने को कुछ बाकी नहीं रह जाता। एक बूंद जान ली तो पूरा सागर जान लिया। जिसने अपने भीतर की बूंद जान ली उसने सबके भीतर के सागर को जान लिया। फिर वह मरता नहीं क्योंकि कहीं वह बचा नहीं। फिर वह अहंकार, वह मैं विदा हो गया, क्योंकि कोई तू नहीं मिला कहीं। जब तक तू मिले तभी तक मैं बच सकता है। जब तक तू न मिले तो मैं भी नहीं बच सकता। वह तू और मैं की जोड़ी साथ साथ है। मार्टिन बूबर की 'आई एण्ड दाउ' कीमती किताब है 'मैं और तू'। मार्टिन बूबर के ख्याल से जीवन के सारे संबंध मैं और तू के सबध हैं, लेकिन एक और जगत भी जो मैं और तू के बाहर है, बियोन 'आई एण्ड दाऊ' एक और जगत है वास्तविक जीवन का, संबंधों का नहीं, जीवन ऊर्जा का, परमात्मा का, जहाँ मैं और तू नहीं है। बंगला में एक छोटा सा नाटक है। नाटक है, जिसमें कथा है कि एक यात्री वृन्दावन गया है। रास्ते में उसके पास जो सामान था, सब चोरी हो गया, पर सोचा उसने अच्छा ही हुआ। कृष्ण के पास खाली हाथ जाऊं यही उचित है, क्योंकि भरे हाथ को वे भी कैसे भर पायेंगे। अगर कृष्ण से भरना है तो खाली हाथ ही लेकर जाऊं, उचित है। शायद कृष्ण ने ही चोर भेजें होंगे। उसने धन्यवाद दिया और आगे बढ़ गया। फिर वह मंदिर के द्वार पर पहुंचा, लेकिन द्वारपाल ने हाथ से उसे रोक लिया और कहा, भीतर न जा सकोगे। पहले सामान बाहर रख दो। पर उसने कहा, अब तो सामान बचा ही नहीं, वह तो कृष्ण के चोर पहले ही छीन चुके। नहीं, द्वारपाल ने कहा, सामान पहले बाहर रख दो फिर भीतर जा सकते हो यहाँ तो सिर्फ खाली हाथ ही जा सकते हो। उस आदमी ने अपने हाथ देखे, वे खाली थे। उसने द्वारपाल के सामने हाथ किये, वे खाली थे। द्वारपाल ने कहा, नहीं, भरे हाथ नहीं जा सकते हो। पर वह आदमी कहने लगा कि मैं तो अब बिल्कुल खाली हाथ हूं। उसे द्वारपाल ने कहा, जब तक तुम हो तब तक कैसे खाली हाथ हो सकते हो। जब तक तुम कहते हो मैं तो बिल्कुल खाली हाथ हूं तब तक तुम खाली हाथ कैसे हो सकते हो। कम से कम मैं तो तुम्हारे हाथों से भरा ही है। इस मैं को बाहर छोड़ दो। मैं को बाहर छोड़े बिना कोई परमात्मा के मंदिर में प्रवेश नहीं पा सकता। मैं को छोड़कर जो जीता है वह एम्पैथी को, सहानुभूति

को उपलब्ध होता है। जिसका मैं मर जाता है उसके लिए दूसरों को जो हो रहा है वह भी उसे ही हो रहा है। या उसका भी सवाल नहीं है, हो रहा है, कहीं भी कांटा गड़ता है तो उसकी पीड़ा उसे भी पहुंच जाती है। कहीं आनंद की बांसुरी बजती है तो वे भी उसके अपने ही स्वर हो जाते हैं। अब कुछ भी पराया नहीं, अब कुछ भी अजनबी नहीं, अब कुछ भी दूसरा नहीं समानुभूति आध्यात्म की श्रेष्ठतम ऊंचाई है सहानुभूति हमारी काम चलाऊ दुनिया की व्यवहारिकता है। उस सहानुभूति में अक्सर ९९ तो प्रतिशत झूठी होती है सहानुभूति। जब हम सिर्फ धोखा देते हैं दूसरे को, नहीं अपने को भी। कभी एक प्रतिशत सच होती तब भी मैं और तू कायम रह जाते। घड़े मौजूद रहते, शायद झांककर एक घड़े से दूसरे घड़े में हम देख लेते लेकिन फिर भी दोनों के बीच एक ही है, एक ही प्रवाहित है इसका कोई पता नहीं चल पाता।

समानभूति मैंने उस तत्व को कहा है जहां एक ही शेष रह जाता है, जहां दूसरा नहीं है। अद्वैत कहें, ब्रह्म कहें, परमात्मा कहें, और कोई नाम दें, अस्तित्व कहें, एक्जीस्टेंस कहें, कोई और नाम दें। एक ही जहां रह जाता है वहां जीवन अपनी परम ऊँचाइयों पर अपने पीक एक्सपीरियंस पर, परम अनुभूति को उपलब्ध होता है। गिराना होता है तू और मै को। मैंने कहा, उस दिन यह भी कि मैं और तू का संबंध ही हिंसा है। कठिन होगा थोड़ा, क्योंकि मैं और तू के अतिरिक्त हम कोई भी क्षण नहीं जानते। लेकिन थोड़े प्रयोग करें तो शायद क्षणों की झलक मिल जाय। कभी रेत के किनारे नदी पर बैठकर लेट जाय, दोनों हाथ पैर पसार कर। छाती को भर लें रेत से। बन्द कर लें आंखें, गपा लें अपने चेहरे को भी रेत में। भूल जायं यह कि आप हैं और रेत हैं। तोड़ दें वह बीच की जगह, वह फासला जो रेत आपसे अलग करते हैं। रेत की ठण्डक को प्रवेश कर जाने दें स्वयं में, स्वयं की गर्मी को प्रवेश कर जाने दें रेत में। अनुभव करें कि फैल गये और एक हो गये उस रेत से। कभी खुले आकाश में हाथ फैलाकर खड़े हो जाय, आलिंगन कर लें खुले आकाश का, शून्य का। कभी घड़ी भर मौन हो जायं खुले आकाश के साथ। छोड़ दें यह ख्याल कि शरीर की सीमा पर मैं समाप्त हो जाता हूं। बढ़ायें अपनी सीमा को, हो जाने दें इतनी ही बड़ी जितनी आकाश की है। कभी रात के तारों के साथ लेट जाय जमीन पर और रात के तारों को आने दें अपने तक और जाने दें अपने को तारों तक और भूल जायं कि वहां तारे हैं और यहां आप हैं। तारे और आपके बीच जो लेने देन रहे वही बाकी रह जाये, जो कम्युनिकेशन हो, वह जो सम्पदा हो वही बाकी रह जाये तो बहुत जल्दी बहुत शीघ्र धीरे धीरे अचानक जीवन में एक्सप्लोजन होने लगेगे और एहसास होने लगेंगे। न तो उस तरफ कोई तू है, न इस तरफ कोई मैं है। शायद एक ही हैं दोनों तरफ, एक ही बायें और दायें हाथ दो छोरों पर एक ही हवा की लहर जो इधर आयी थी, उधर चली गई है। आप जो श्वांस ले रहे हैं मेरे पास आ जाती है, फिर मेरी हो जाती है और मैं ले भी नहीं पाता कि निकल जाती है और आपकी हो जाती है। अभी वृक्ष लेता था उसे, अभी पृथ्वी लेती थी उसे, अभी आपने लिया था उसे, अभी उसने लिया उसे।

जीवन एक सतत प्रवाह है, जीवन एक अखण्ड धारा है, जीवन एक है लेकिन हम उस एक का अनुभव नहीं कर पाते, क्योंकि हम सबने अपने आसपास परकोटे खींचे हैं, हमने अपनी दीवालें बनायीं हैं, हमने सब तरफ से अपने को रोका है और सब तरफ सीमायें बनायी हैं। ये सीमायें हमारी कल्पित बनायी गई सीमा ये हैं, ये सीमायें कहीं हैं नहीं, ये सीमायें हमने बना रखी है, ये सीमायें काम चलाऊ है, इन सीमाओं का कहीं कोई अस्तित्व नहीं है। अगर एक वैज्ञानिक से पूछें तो वह भी कहेगा, नहीं है और अगर एक आध्यात्मिक से पूछें तो वह भी कहेगा नहीं है। आध्यात्मिक इसलिये कहेगा कि आत्मा के फैलाव को देखा उसने, वैज्ञानिक इसलिये कहेगा कि सब सीमायें खोजी और सीमाओं को कहीं पाया नहीं उसने। वैज्ञानिक से पूछें कि आपका शरीर कहां समाप्त होता है तो वह कहेगा, कहना मुश्किल है। हड्डियों पर समाप्त होता है? हड्डियों पर समाप्त

नहीं होता क्योंकि हड्डियों पर मांस है। मांस पर समाप्त होता है ? मांस पर नहीं होता क्योंकि मांस पर चमड़े की पर्त है। चमड़े की पर्त पर समाप्त होता है ? चमड़े की पर्त पर समाप्त नहीं होता क्योंकि बाहर हवा की अनिवार्य पर्त जरूरी है। अगर वह न रह जाय तो न हड्डी होगी, न मांस होगा। हवा की पर्त पर समाप्त होता है ? नहीं, हवा की पर्त तो दो सौ मील पृथ्वी के पूरे होने पर समाप्त हो जाती है। लेकिन अगर सूरज की किरणें इस हवा के पर्त को न मिलती रहें दो यह हवा की पर्त भी न रह जाएगी सूरज तो दस करोड़ मील दूर है। तो मेरा शरीर सूरज पर समाप्त होता है ? दस करोड़ मील दूर ? तो सूरज भी ठण्डा पड़ जाएगा, अगर महासूर्यों से उसे प्रकाश की किरण निरन्तर न मिलती रहे। तो मेरा शरीर कहां समाप्त होता है ? वैज्ञानिक कहता है, सब सीमायें खोजीं और सीमाओं को नहीं पाया। आध्यात्मिक कहता है भीतर देखा और असीम पाया। वैज्ञानिक कहता है, सीमाओं को नहीं पाया, वैज्ञानिक नाकार की भाषा बोलता है निगेटिव की। वह कहता है सीमा नहीं है। आध्यात्मिक पाजेटिव विधेय की भाषा बोलता है, वह कहता है असीम है लेकिन उन दोनों बातों का मतलब एक है और आज विज्ञान और धर्म बड़े निकट आकर खड़े हो गये हैं। उनकी सारी घोषणाएँ निकट जाकर खड़ी हो गई हैं। आज वैज्ञानिक नहीं कह सकता कि आपका शरीर कहां समाप्त होता है ? यह शरीर वहीं समाप्त है जहां ब्रह्माण्ड समाप्त होता है। इसके पहले समाप्त नहीं होता है।

इस अनुभव को मैं समानभूति कहता हूं। जब तारे दूर नहीं रह जाते मेरे भीतर घूमने लगते हैं, और जब मैं तारों से दूर नहीं रह जाता और उसकी किरणों पर नाचने लगता हूं, और जब सागर की लहरें दूर नहीं रह जाती, मेरी ही लहरें हो जाती हैं और जब मैं दूर नहीं रह जाता, सागर की लहरों का झाग बन जाता हूं और जब वृक्षों पर खिले फूल मेरे ही फूल होते हैं और वृक्षों से गैर सूखे पत्ते मेरे ही सूखे पत्ते होते हैं तब मैं अलग नहीं रह जाता हूं। अलग हम हैं भी नहीं। अलग से ज्यादा कोई भ्रम नहीं है, सपरेटनेस अलग होने का ख्याल सबसे ज्यादा हलूजन है, सबसे बड़ा भ्रम है लेकिन उसे हम पालकर जीते हैं। उपयोगी है, अगर उसे न पा लें तो कठिनाई होगी। आपका धन है, उसे मैं मेरा नहीं कह सकता। आपके कपड़े हैं और उन्हें मैं उतार के मेरे नहीं बना सकता। जीवन के व्यवहार में आपकी दूकान है, वह मेरी नहीं है और आपका मकान है वह मेरा नहीं है। हालांकि आपके घर मेहमान होता हूं तो आप कहते है सब आपका ही है, लेकिन उसको गंभीरता से लेने की कोई भी जरूरत नहीं है।

जीवन के व्यवहार में सीमायें काम करती मालूम पड़ती हैं लेकिन जीवन सिर्फ व्यवहार का नाम नहीं हैं। जीवन सिर्फ दुकान नहीं है, मकान और कपड़े नहीं है और जीवन केवल आजीविका के उपाय नहीं है, जीवन तिजोरियों में नहीं है, वस्त्रों मे नहीं है। जीवन बड़ी बात है। जीवन सिर्फ उपयोगिता युटीलिटी नहीं है, जीवन आनन्द भी है, जीवन अपार रहस्य भी है इसलिए उपयोगिता को जो सब मान लेगा वह मुश्किल में पड़ जायेगा। उपयोगिता में हम बहुत झूठी बातें कहते हैं पर उनसे काम चलता है, चल जाता है क्योंकि सारी उपयोगिता माने हुये सत्यों पर चलती है। मैं किसी के घर रुकता हूं और कहता हूं पानी का एक गिलास ले आयें, वह गिलास में पानी ले आता है। अब तक कोई पानी का गिलास लाता हुआ मिला नहीं। चल जाता है, झूठ है, बिल्कुल। पानी का गिलास लाइयेगा भी कैसे ? पानी का गिलास लाया नहीं जा सकता लेकिन समझें हम दोनों समझ गये। वह पानी का गिलास तो नहीं लाता, गिलास तो कांच का लाता है, तांबे की लाता है, पीतल की लाता है, उसमें पानी ले आता है। न तो मैं उससे झगड़ा करता हूं कि आपने मेरी बात मानी नहीं, वह न झगड़ा मुझसे करता है कि आप आध्यात्मिक भाषा बोल रहे हैं। काम चल जाता है लेकिन जिंदगी कामचलाऊपन से ऊपर है, उससे

इशारे हो जाते हैं, गेस्चर से काम चल जाये बात पूरी हो जाती है। लेकिन जिसने कामचलाऊपन को, व्यवहार को जिंदगी समझ लिया वह आदमी जिंदगी के बड़े रहस्यों से वंचित रह जाता है। उसके लिए जिंदगी के परम महल के द्वार खुल ही नहीं पाते, उसके लिए जीवन योग का संगीत बज ही नहीं पाता, उसके लिए परमात्मा पुकारता रहता है, उसे उसकी पुकार सुनाई ही नहीं पड़ती। यह जो अद्वैत, असीम, यह जो अनंत जीवन है, उपयोगिता में उसे खो मत देना, उसे उपयोगिता के बाहर खोजते ही रहना है, उसे मेरे इशारे के बाहर अन्वेषण करते ही रहना है. उसे उस दिन तक भी खोजना है जब मिल ही नहीं जाता है। उसके मिलने को मैंने समानभूति कहा है। वही अहिंसा है. वही प्रेम है, वही अद्वैत है, वही मुक्ति है। एक आखिरी सवाल और पूछ लें।

प्रश्न : आचार्य जी, हिंसा और सामाजिक न्याय का क्या संबंध है? कभी ऐसी चर्चा की जाती है कि अहिंसा और हिंसा दोनों सामाजिक न्याय की रीति ही है और माओ, स्टालिन, हिटलर वगैरह ऐतिहासिक अनिवार्यता थी। आपका इस पर क्या मंतव्य है?

उत्तर : अहिंसा सामाजिक नीति और नियम नहीं है और अगर अहिंसा सामाजिक नीति और नियम है तो हिंसा से कभी छुटकारा नहीं हो सकता। अहिंसा आध्यात्मिक नियम है, सामाजिक नहीं, सोशल नहीं, स्प्रीचुअल है। अगर सामाजिक नियम बनायें हम अहिंसा को तब तो फिर कभी हिंसा भी जरूरी मालूम होगी और ऐसा उपद्रव है कि कभी तो अहिंसा की रक्षा के लिए भी हिंसा जरूरी हो जायेगी। एक आदमी अगर किसी पर हिंसा कर रहा है तो अदालत उस आदमी पर हिंसा करेगी क्योंकि वह हिंसा कर रहा था एक राष्ट्र अगर दूसरे के साथ हिंसा करेगा तो वह राष्ट्र उसे हिंसा से उत्तर देगा क्योंकि हिंसा का उत्तर देना न्याय संगत है और हिंसा को झेलना अन्याय है और अन्याय को झेलना उचित नहीं है। अहिंसा के जिस सूत्र की मैं बात कर रहा हूं वह आध्यात्मिक नियम है और अगर सामाजिक अहिंसा की हम बात करना चाहें तो सामाजिक अहिंसा सदा सापेक्ष रिलेटिव नियम होगा। उसमें हिंसा अहिंसा दोनों की जगह होगी उसमें हिंसा भी चलेगी, अहिंसा भी चलेगी। उसमें वे दोनों मिश्रित होंगी, वह मिक्स्ड इकानामी होगी। उसमें अहिंसा और हिंसा एक दूसरे के साथ खड़ी रहेंगी और पहलू बदलते रहेंगे। समाज के तल पर पूर्ण अहिंसा अभी नहीं पायी जा सकती, अभी तो एक एक व्यक्ति के तल पर ही पूर्ण अहिंसा नहीं पायी जा सकती है समाज के तल पर कभी पा सकेंगे, इसकी आशा भी शायद करनी उचित नहीं है। यह वैसे ही उचित नहीं है जैसे कि आत्मज्ञान हम किसी दिन समाज के तल पर पा सकेंगे, यह आशा उचित नहीं है। किसी दिन सारे मनुष्य आत्मज्ञान को उपलब्ध हो जायेंगे ऐसी आशा करनी उचित नहीं है क्योंकि चुनाव है और कोई अगर आत्म अज्ञानी रहना चाहेगा तो उसे आत्मज्ञान के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता। आत्मज्ञान सदा ही स्वतंत्र रहेगा। हम यह आशा करते हैं कि धीरे-धीरे ज्यादा से ज्यादा लोग आत्मज्ञान को उपलब्ध होते जायेंगे लेकिन एक और खतरा है। वह भी मैं आपसे कहूं। जो व्यक्ति भी आत्मज्ञान को उपलब्ध हो जाता है वह हमारे इस समाज में लौटना बन्द हो जाता है। वह वापस नहीं लौटता। उसके नये जन्म असम्भव हो जाते हैं क्योंकि नये जन्म के लिए आकांक्षा और तृष्णा और कामना जरूरी है। वही लौटता है नये जन्म के लिए जिसकी कोई कामना शेष रह गयी जो उसे पूरा करना चाहता है। अगर महावीर और बुद्ध लौटते हैं, एक एक जन्मों में तो भी वे लौटते हैं कि कम से कम एक कामना उनकी शेष रह गयी कि उन्होंने जो जाना है वह दूसरों से कहना चाहते हैं। वह भी काफी वासना है। अगर मेरे पास कुछ है और मैं दूसरों से कहना चाहता हूं तो भी लौट आऊँगा लेकिन वह भी वासना है, आखिरी वासना है, वह भी तिरोहित हो जाती है, फिर लौटना कैसे होगा। जो आत्म ज्ञान को उपलब्ध होते हैं वे तिरोहित हो जाते हैं अंतरिक्ष में। वे किसी विराट

कामकाज में, किसी विराट चेतना के साथ एक हो जाते हैं। जो नहीं उपलब्ध होते वे वापस लौटते चले जाते हैं इसलिए समाज कभी कभी आत्मज्ञान के फूल को खिलाता है लेकिन वह फूल खिला, मुर्झाया, उसकी सुगंध आकाश में खो जाती है और फिर समाज चलता रहता है। समाज आत्मज्ञानी नहीं हो सकेगा, समाज अज्ञानी बना ही रहेगा लेकिन इस आत्म अज्ञानी समाज में आत्मज्ञानी व्यक्ति का फूल खिलता रहेगा। खिलता रह सकता है खिलता रहा है।

समाज के तल पर अहिंसा कभी पूर्ण सत्य नहीं हो सकती इसलिए जिन लोगों ने सामाजिक तल पर अहिंसा की बात की है वे हिंसा को भी स्वीकृति देते हैं और देनी पड़ेगी। हिंसा जारी रहेगी। तब हिंसा अहिंसा दोनों पहलू होंगे समाज के। जब जो जरूरी हो, जब अहिंसा से काम चले तो अहिंसा और जब हिंसा से काम चले तो हिंसा। जिससे काम चल जाए। हिंदुस्तान में आजादी की लड़ाई चलती थी तो अजादी की लड़ाई लड़ने वाला अहिंसक था। फिर वही सत्ताधारी बना तो हिंसक हो गया। आजादी को लड़ाई अहिंसा से चल सकती थी क्योंकि हिंसा से चलने का कोई उपाय नहीं दिखाई नहीं पड़ा था तो उसने आजादी की लड़ाई अहिंसा से चला ली लेकिन सत्ता में आने के बाद उसने नहीं सोचा कि सत्ता अहिंसा से चलाई जाए। अब सत्ता हिंसा से चल रही है। अंग्रेजों ने इतनी गोली कभी नहीं चलाई थी इस मुल्क में जितनी उन लोगों ने चलाई जो अहिंसक हैं। तो जो अहिंसा को नीति समझता है, समाज की एक कनवीनिएंस समझता है, एक सुविधा समझता है, जरूरत पड़ने पर हिंसक हो जाएगा। हिंसक अहिंसक होना उसकी सुविधा की बात होगा लेकिन महावीर को किसी भी भांति हिंसक नहीं बनाया जा सकता। उनके लिए अहिंसा सामाजिक नीति नियम नहीं, आध्यात्मिक सत्य है। वह कनवीनियंस नहीं, वह कोई सुविधा की बात नहीं है कि हम कुछ भी हो जाएँ। वह उनका परम नियति है, वह डेस्टेनी है। अहिंसा के लिए सब खोया जा सकता है, स्वयं को भी खोया जा सकता है, अहिंसा किसी के लिए नहीं खोयी जा सकती। पर, ऐसा अहिंसक होना व्यक्ति के लिए ही संभव है और अगर किसी समाज ने ऐसी अहिंसक होने की भूल की तो वह सिर्फ कायर हो जाएगा, अहिंसक नहीं हो पाता। ऐसा हुआ भी। महावीर की अहिंसा को समाज ने समझा कि हम अपनी अहिंसा बना लेंगे तो अहिंसक समाज पैदा होंगे। अहिंसक समाज हो नहीं सकता। महावीर की अहिंसा के सिर्फ इंडीवीजुअल व्यक्ति हो सकते हैं। इसलिए जो समाज महावीर की अहिंसा को मानकर अहिंसक होने की कोशिश करेगा वह सिर्फ कायर, कावर्ड हो जायेगा, और कुछ भी नहीं हो सकता लेकिन वह अपनी कायरता को अहिंसा कहेगा। हिंसा न करने की हिम्मत को अहिंसा कहे चला जाएगा। लेकिन उसकी भी चमड़ी को जरा उघाड़े तो भीतर हिंसा के झरने फूटते हुए मिल जायेंगे। कायर भी बड़ा अहिंसक होता है लेकिन मन ही मन में होता है। समाज अभी अहिंसक नहीं हो सकता कभी हो सकता है ऐसा भी मैं नहीं कहता। बहुत मुश्किल है, असंभव ही है। व्यक्ति ही अहिंसक हो सकता है। जिस अहिंसा की मैं बात कर रहा हूं वह अहिंसा सामाजिक सत्य नहीं, व्यक्तिगत उपलब्धि है।

और दूसरी बात उसमें पूछी है कि हिटलर. मुसोलिनी या स्टालिन या माओ सामाजिक अनिवार्यतायें हैं, अगर वे सामाजिक अनिवार्यतायें हैं तो वे व्यक्ति नहीं है। व्यक्ति है ही वही जो समाज की अनिवार्यता के ऊपर उठता है जो कि समाज की विवशता के ऊपर उठता है, जो स्वीकार है, जो चुनाव करता है, जो निर्णय करता है। लेकिन अगर वे सामाजिक अनिवार्यतायें हैं, मजबूरी है समाज की तब फिर वे व्यक्ति नहीं हैं और जो जिस भांति हिंसक होता है उस भांति वे भी हिंसक होंगे और अगर वे व्यक्ति नहीं हैं तो मनुष्य के तल पर नहीं होंगे, पशु के तल पर वापस गिर गिर जाते है, मनुष्य तल पर होने के लिए सामाजिक अनिवार्यता से ऊपर उठना जरूरी है। सिर्फ वही व्यक्ति

मनुष्य है जिसके पास व्यक्तित्व है, जो यह कह सकता है कि जो भी मैं हूं वह मेरा निर्णय है, समाज धक्का नहीं । जो भी मैं कह रहा हूं वह मैं कर रहा हूं, समाज मुझसे करवा नहीं रहा है । लेकिन कम्युनिज्म ऐसा मानता है कि व्यक्ति इतिहास निर्मित नहीं करते हैं, इतिहास व्यक्तियों को निर्मित करता है । कम्युनिज्म ऐसा मानता है कि इट इज नाट दी कांसेसनेस हिवच डिटरमेंस सोशल कंडीशंस, बट ओन द कंट्रेरी सोशल कंडीशस आर द बेस हिवच डिटरमेंट कांसेसनेस। समाज की स्थितियों ही चेतना को निर्धारित करती है, चेतना नहीं समाज की स्थितियां को निर्धारित करती। तो कम्युनिज्म के हिसाब से तो व्यक्ति है ही नहीं। माओ नहीं है, हिटलर नहीं है, मुसोलिनी नहीं है, महावीर नहीं है, बुद्ध नहीं है, लेकिन पता नहीं कम्युनिज्म किस तरह की अवैज्ञानिक बातें विज्ञान के नाम पर कहे चला जाता है। कोई सामाजिक परिस्थिति महावीर को पैदा नहीं कर सकती और अगर सामाजिक परिस्थिति महावीर को पैदा करती है तो यह सामाजिक परिस्थिति महावीर के लिए अकेले के लिए परिस्थिति थी। बिहार में और लाखों लोग थे। यह सामाजिक परिस्थिति महावीर को पैदा करती तो और पचासों महावीर क्यों पैदा नहीं करती ? अगर रूस की परिस्थिति लेनिन को पैदा करती है तो कितने लेनिन को पैदा करती है ? नहीं, सामाजिक परिस्थियां व्यक्तियों को पैदा नहीं करतीं और करती हों तो वह व्यक्ति नहीं है। सिर्फ सामाजिक घटनाए है और सामाजिक घटनाएं अहिंसक नहीं हो सकतीं, हिंसक होंगी क्योंकि वे पशु के तल पर वापस लौट गयीं बातें हैं।

व्यक्ति चुनाव है। मैं भी इतने से राजी हो जाऊंगा कि माओ या स्टालिन मनुष्य के तल पर बहुत ऊपर नहीं उठते, पशु के तल पर बहुत नीचे चले जाते हैं। लेकिन आप कहेंगे मनुष्य के कल्याण के लिए ही वे हिंसा कर रहे हैं। सदा हिंसाए जब भी की गयी हैं तो कल्याण के लिए ही की गयी हैं। मध्य युग में ईसाई पादरियों ने लाखों लोगों को जलवा डाला। मनुष्य के कल्याण के लिए। मुसलमान हिन्दू को मारता है मनुष्य के कल्याण के लिए, हिन्दू को मुसलमान भी नहीं मारता कि हिन्दू से उसकी कुछ दुश्मनी है, इसलिए मारता है कि हिन्दू बेचारा काफिर है, भटका हुआ है, उसे रास्ते पर लाना है। और न आता हो रास्ते पर तो कम से कम मार के उसकी आत्मा को अगले जन्म में रास्ते पर लगा दें। हिन्दू मुसलमान को कोई इसलिए नहीं मारता कि उसका कुछ बुरा सोचता है बल्कि इसलिए मारता है कि भटका हुआ है, रास्ते पर लाना है । जैसे एक गाय को और दूसरे पशुओं को, घोड़ों का यज्ञों में चढ़ाता रहा कि यज्ञ में चढ़ाने से वे घोड़े, गायें स्वर्ग चले जायेंगे। ऐसे ही धर्म की बलि वेदी पर एक दूसरे धर्मों के लोगों को लोग चढ़ाते रहते हैं। यह उनके ही कल्याण के लिए। कम्युनिज्म लाखों लोगों को काट डालता है उनके ही कल्याण के लिए। फैसिज्म लाखों लोगों को काट डालता है उनके ही कल्याण के लिए। हिंसा जब प्रखर रूप से फैलना चाहती है तो आपके ही कल्याण का मुखौटा पहन कर आती है। चालाक है, साधारण भी नहीं है, कनिंग है। साधारण हिंसा कहती है कि मैं आपको अपने हित में मारना चाहता हूं और चालाक हिंसा कहती है आपके ही हित में आपको मारना चाहता हूं। हर बार आदमी बहाने बदल लेता है। अब इस्लाम और हिन्दू और कैथेलिक पुराने हो गये तो अब कम्युनिज्म, सोशलिज्म नये बहाने हैं। कुछ दिनों में वे भी पुराने हो जायेंगे। फिर आदमी और नये बहाने खोज लेगा। आदमी की हिंसा करनी है, उनके लिए बहाने खोजता है। बहाने हैं इसलिए हिंसा नहीं करता है। अगर हम माओ या स्टालिन के चित्त का विश्लेषण करें तो हम उनके भीतर एक विक्षिप्त आदमी को पायेंगे लेकिन वह विक्षिप्त आदमी बड़ा होशियार है, रेशनलाइज है। क्रांति, समाज क्रांति, भविष्य के स्वर्ण युग, उनको लाने के लिए लाखों लोगों को काट डाला जाता है। लेकिन वह स्वर्ण युग कभी नहीं आया और आदमी सदा से काटा जा रहा है। न तो रूस में आ गया वह स्वर्ण युग, न वह चीन में आ गया, न वह जर्मनी में आ गया, न वह इटली में आया। सारी दुनिया में कितनी क्रांतियां और कितने

खून बह चुका, वह स्वर्ण युग आता ही नहीं। पुरानी क्रांतियाँ खत्म हो जाती हैं, नयी क्रांतियाँ फिर खून करने लगती हैं। वह स्वर्ण युग नहीं आता। हजारों साल का अनुभव यह कहता है कि आदमी हिंसा करना चाहता है इसलिए हिंसा के लिए फिलासिफीज खोज लेता है, दर्शन खोज लेता है, यह इतिहास की अनिवार्यताएं नहीं, यह व्यक्तियों के भीतर हिंसा की अनिवार्यताएं हैं। जिनके लिए वह इतिहास को मोड़ देता रहता है और इतिहास को भी आधार बना लेता है अपनी हिंसा के। मेरे लिए अनिवार्यता को स्वीकार करना ही मनुष्य की गरिमा को खो देना है। जो कहता है कि कोई अनिवार्यता है जिसे मुझे जीना ही पड़ेगा। वह आदमी गुलाम है, उसने अपनी आत्मा को खो दिया है। जो आदमी कहता है कोई अनिवार्यता नहीं है जिसे मुझे मजबूरी में करना पड़ेगा, जो भी मैं करूंगा वह मेरा चुनाव है वह आदमी आत्मा को उपलब्ध हो जाता है। निर्णय, डिसीजन ही मनुष्य के भीतर संकल्प और आत्मा का जन्म है।

●●●

एक विनोद प्रसंग

—स्वामी अगेह भारती, जबलपुर

आचार्य श्री इतने विनोद प्रिय हैं कि आसपास के लोग हंस-हंस कर लोट पोट हो जाते हैं। और वे विनोद में जो कहेंगे उसके भी अपने अर्थ होंगे।

अभी 'माउन्ट आबू साधना शिविर' से लौटने पर ११ अप्रैल को आचार्य श्री अहमदाबाद में जयंति भाई के निवास पर थे। रात के ९–३० बजे बम्बई के लिए प्रस्थान करेंगे। ७ बजे बम्बई की मा धर्म ज्योति पहुंचती हैं। एकाध क्षण की व्यावहारिक बात-चीत के बाद वे कहती हैं: "आचार्य श्री, सभी लोग कहते हैं कि आप सबों के दिमाग के 'स्क्रू' ढीले किये जा रहे हैं।" आचार्य श्री ने मुसकाते हुए कहा: "ढीले नहीं, ढीले करने पर तो तुम फिर 'टाइट' कर लोगे। निकाल कर बाहर ही फेंक दे रहा हूं।"

●●●

समग्रता ही जीवन है

(आचार्य श्री की मित्रों के बीच भेंट वार्ता)

मैं अगर दुखी हूं तो सारी दुनियां जिम्मेवार है ऐसा ही मन मानने को करता है लेकिन जब मेरे दुख में सारी दुनिया जिम्मेवार है तो यह कैसे हो सकता है कि सारी दुनिया के दुख में मैं जिम्मेवार न रहूं । यह तो एक ही सिक्के के दो पहलू हैं । अगर इस कमरे में बैठे हुए सारे लोग मेरे दुख में जिम्मेवार हैं तो यह कैसे संभव है कि मैं उनके दुख में जिम्मेवार न हो जाऊं । क्योंकि जब तुम सोचोगे, तुम जिस सारे कमरे के बाबत सोचोगे उसमें मैं भी हूं । मैं जिस दुनियां के संबंध में सोचूंगा तो तुम भी उस दुनिया में हो । आम हमारा मन यह करता है मानने का कि मैं अगर दुखी हूं तो सारी दुनिया जिम्मेवार है, लेकिन इसका ही दूसरा पहलू है कि तब दुनिया के दुख में मैं भी जिम्मेदार हूं क्योंकि यहां हमारा जो जीवन है वह अलग अलग जीवन नहीं है । जीवन इकट्ठा है और इतना इकट्ठा है कि सिर्फ हमारी समझ की कमी है कि हमें उसका इकट्ठापन पूरा दिखायी नहीं पड़ता । इस कमरे में हम इतने लोग बैठे हैं । इस कमरे में अगर एक भी आदमी दुखी है तो इस कमरे की हवा, इस कमरे का वातावरण दुख की तरंगों से भर देगा और इस कमरे में आने वाले व्यक्ति को पता भी नहीं चलेगा कि वे दुख के वातावरण में प्रविष्ट कर गये हैं । हम सब एक दूसरे को छू रहे हैं । छू रहे हैं, यह कहना भी गलत ही है, हम सब एक दूसरे से जुड़े ही हुए हैं । हम इतने ज्यादा जुड़े हुए हैं कि जिसका हिसाब लगाना मुश्किल है लेकिन हमारी हालत ऐसी है जैसे एक वृक्ष के पत्ते को होश आ जाय तो वह सोचे तो उसको ऐसा समझ में पड़े कि वह जो पड़ोस का पत्ता है वह अलग है, मैं अलग हूं लेकिन वह एक ही शाखा पर लगे दोनों पत्ते हैं और उनमें एक पत्ता भी बीमार नहीं पड़ सकता सब पत्ते को बिना बीमार किये । सब जुड़े हुए हैं एक की लहरें दूसरे पर पहुंची रहेंगी । लेकिन हम कह सकते हैं कि एक वृक्ष के सब पत्ते जुड़े हैं लेकिन बगल का वृक्ष तो अलग है । लेकिन नीचे जमीन दोनों को जोड़े हुए है और जिस जमीन से इस वृक्ष की जड़ें बंधी हैं उसी से दूसरे की भी बंधी हैं और यह बहुत गहरे में असंभव है कि एक वृक्ष बीमार हो और दूसरा स्वस्थ रह जाय क्योंकि दोनों एक ही जमीन पर जुड़े हुए है, एक ही हवाओ से जुड़े हैं । हम यह कह सकते हैं कि इस पृथ्वी पर जो वृक्ष हैं वह हो सकता है जुड़ा हुआ हो लेकिन और पृथ्वियां होंगी, कहीं उन पर वृक्ष होंगे लेकिन बस मामला इतना ही है कि हमें दिखायी नहीं पड़ता है कि जोड़ सब तरफ फैला हुआ है । असल में दूर, अतहीन सीमाओं पर भी जो तारे होगे वे भी किसी न किसी भांति मुझसे प्रभावित होंगे और मैं उनसे प्रभावित होऊंगा । यानी जिन तारों का हमें कोई पता भी नहीं है और जिन तारों को मेरा तो कोई पता ही न होगा लेकिन पता होना ही जरूरी नहीं है, एक समुद्र के किनारे जो लहरें आकर टकरा गयी उसको हजारों लहरों ने आकर प्रभावित किया है जिसका इसे कोई भी पता नहीं है जो न मालूम कितने हजारों मील दूर एक लहर उठीं होगी । अब उस लहर के संदर्भ में सारी लहर प्रभावित होगी । अभी यह जानकार हम हैरान होंगे कि लहर जैसी चीज आम-तौर से हमें आती हुई दिखायी पड़ती है, कोई लहर आती नहीं । आम तौर से हमें ऐसा लगता है कि लहर चली आ रही है, कोई लहर आती नही है । लहर तो अपनी जगह है उठती है लेकिन उसके उठने की वजह से गड्ढा हो जाता है । दूसरी लहर अपनी जगह उठती है, कोई लहर आती नहीं, सब लहरें अपनी जगह उठतीं

और गिरती हैं लहर आना बिल्कुल ही भ्रामक शब्द है लेकिन वह जो छाती है वह कम्पलीट हो जाती है। एक लहर उठेगी तो उसका परिणाम पूरे अतहीन सागर की छाती पर पड़ने वाला है और वह जो एक लहर उठी है इससे रेत पर भी फर्क पड़ेगा, हवाओं पर भी फर्क पड़ेगा। सब कुछ बदल जायगा। यह दुनिया ठीक ऐसी ही नहीं होती अगर वह लहर न उठी होती। इस दुनिया में बुनियादी फर्क होता। हम एक आदमी को हटा लें दुनिया से, सारी दुनिया दूसरी होगी। आदमी तो बहुत बड़ी चीज है, कई दफे तो इतनी छोटी घटनाएं सारे जगत को प्रभावित कर रही हैं।

मैं पीछे कह रहा था कि नेपोलियन जिन्दगी भर बिल्ली से डरता है। छः महीने का था, एक बिल्ली उसकी छाती पर सवार हो गयी। नौकरानी बाहर गयी हुई थी, वह भागी हुई आयी, बिल्ली उसने उतार दी, लेकिन वह ६ महीने के बच्चे पर ड्रामेटिक असर हो गया गया बिल्ली का। वह जिन्दगी में शेर से लड़ सकता था पीछे लेकिन बिल्ली को देखकर कंप जाता था और जिस युद्ध में वह नील्सन से हारा उसमें नील्सन सत्तर बिल्लियां अपने फौज के सामने बांधकर ले गया था, क्योंकि उसे यह पता चल गया था कि नेपोलियन बिल्ली से डरता है। और मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि नील्सन नहीं जीता, बिल्लियां जीतीं। अगर नोपोलियन की छाती पर उसकी ६ महीने की उम्र में एक बिल्ली सवार न होती तो दुनिया का इतिहास पूरा दूसरा होता। अगर नेपालियन जीतता तो इतिहास बिल्कुल दूसरा होता, मगर नेपोलियन हारा तो इतिहास बिलकुल दूसरा हो गया। लेकिन इसकी और गहराई मे जायें तो एक बिल्ली का बच्चा जो उसकी छाती पर चढ़ गया था वह सारी दुनिया के इतिहास को प्रभावित करने वाला बच्चा है, वह साधारण नहीं, ऐतिहासिक बच्चा है। यानी तब हो सकता था, भारत अंग्रेजों का कभी गुलाम नहीं हुआ होता अगर वह बिल्ली का बच्चा नेपोलियन की छाती पर न चढ़ा होता। तब हो सकता था अंग्रेजों का साम्राज्य कभी पैदा ही नहीं हुआ होता क्योंकि वह तो नील्सन की लड़ाई में तय हुआ कि साम्राज्य जगत पर किसका होगा-फ्रांस का होगा कि इंगलेंड का होगा। और उस बिल्ली के बच्चे को क्या मतलब दुनिया के इतिहास से? वह ऐसे गुजर रहा और एक बच्चे पर सवार हो गया है। तो उसे क्या लेना देना है?

मैं सिर्फ उदाहरण के लिए कह रहा हूं कि जिंदगी इतनी संबंधित है कि वह जिसको हम बहुत क्षुद्र कहते हैं, उसको भी क्षुद्र नहीं कहना चाहिए, सिर्फ हम इसलिए क्षुद्र कह पाते हैं कि हमें उसका विराट संदर्भ में क्या क्या परिणाम होंगे यह हमें कुछ भी पता नहीं है। सब जुड़े हैं हम। वह जो जीवित है जुड़ा है, वह जो नहीं जीवित हैं, वे भी जुड़े हैं। यानी हमारे सुख और दुख में हमारे जीवित लोगों का ही हाथ नहीं है, वह, जो अब नहीं हैं जगत में उनका भी हाथ है और हमारे सुख दुख में, हम और गहरे देखें तो अभी जो पैदा नहीं हुए हैं उनका भी हाथ है। जरा मुश्किल पड़ता है, क्योंकि पहले तो हमें यह देखना मुश्किल पड़ता है कि वियतनाम में किसी आदमी की हत्या हो गयी है तो उससे मेरा क्या संबंध है? लेकिन मैं उस दुनिया को बना रहा हूं जिसमें वियतनाम संभव है। अमरीका को गाली देकर कुछ हल नहीं होगा। मैं भी उस दुनिया को बनाने में जिम्मेवार हूं जिसमें वियतनाम जैसी घटना घट सकती है। मैं उस दुनिया को बना रहा हूं जिसमें अहमदाबाद का दंगा हो सकता है, भले अहमदाबाद में नहीं रहता हूं, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। लेकिन जिस दुनिया में मैं रहता हूं उसी में अहमदाबाद भी संभव हुआ है। तो जाने अनजाने मैं भी जुड़ा हुआ हूं, अपराधी मैं भी हूं और अगर जिन्दगी में कहीं फूल खिलता है तो उसकी खुशी का भागीदार भी मैं हूं और जब तक इस भांति एक एक व्यक्ति अनुभव न करे अपनी पूर्ण उत्तरदायित्व को, तब तक दूसरी दुनिया नहीं बनायी जा सकती, क्योंकि जब मैं ऐसा अनुभव करूं कि वियतनाम में जो हत्या हो रही है उसमें मैं जिम्मेवार हूं तब मुझे बदलना ही पड़ेगा अपने को, लेकिन मैं क्या कहता हूं? मैं कहता हूं वह अमरीका के लोग जिम्मेवार हैं, फलां प्रेसिडेंट जिम्मेवार है, मैं बच

गया, मेरी बात खत्म हो गयी। अगर हिन्दुस्तान में गरीब हैं तो मैं कहूंगा, पैसे वाले जिम्मेवार हैं, उसमें मैं क्या कर सकता हूं ? बिरला जिम्मेवार है, फला जिम्मेवार है, बात खत्म हो गयी।

मैं अपने को जिम्मेवार मानूं तो मुझे क्रांति से गुजरना पड़े इसी वक्त, क्योंकि फिर सवाल नहीं है, तब मुझे देखना पड़े कि क्या मेरे मन में भी अपने से किसी को नीचे रखने में रस आता है ? अगर रस आता है तो बिड़ला जिम्मेवार नहीं है किसी को गरीब करने में, मैं भी जिम्मेदार हूं। क्या मुझसे कोई बड़ा मकान बना लेता है तो मुझे पीड़ा और परेशानी होती है ? तो फिर मेरी जिम्मेदारी है, मैं जुड़ा हुआ हुं कहीं, और हम सब भी कोशिश में लगे हुए हैं, चाहे हम गरीब हों, लेकिन हम कोशिश में लगे हुए हैं कि कैसे अमीर हो जाय। वह कोशिश गरीबी पैदा करती रहेगी। अगर मुझे कोई अपमान कर दे तो मेरे मन में उसकी हत्या कर देने का ख्याल नहीं उठ आता ? हम कितनी दफा ही सोच लेते हैं कि मार डालो फलों आदमी को, समाप्त कर दो। नहीं करते हो, यह दूसरी बात है, लेकिन यह हमारे मन में तो उठ आता है। अगर हमारे पास ताकत हो, सुविधा हो, हम पर कोई रोक न हो, हमारे पकड़ जाने का कोई उपाय न हो तो हम इस बात को भी कार्यान्वित कर देंगे। अगर तुम्हारे हाथ में इतनी ताकत हो कि तुम अपने सारे दुश्मनों को आज ही समाप्त कर सको और तुम पर कोई उंगली भी न उठा सके तो पूछना जरूरी है कि क्या तुम करोगे समाप्त, कि छोड़ दोगे। तो मन कहेगा कि समाप्त कर देंगे। न करने का कारण यह नहीं कि हम समाप्त करना चाहते हैं, नहीं करने का कारण यह है कि समाप्त करने की सुविधा बड़ी मुश्किल बात है। किसी को मिल गयी है, वह कर रहा है। किसी को नहीं मिली है, वह सोच रहा है। लेकिन जब तक मेरे मन में ऐसा सवाल उठता हो कि जो मेरे विरोध में है मेरा दुश्मन है। उसे खत्म कर देना है, तब तक वियतनाम होता रहेगा, क्योंकि वियतनाम वही है। एक बड़े पैमाने पर वही घटना हो रही है कि जो मुझे बरदाश्त नहीं है उसे मैं जिन्दा नहीं देखना चाहता हूं। हमारा पूरा समाज वही कर रहा है। एक चोर को हम सजा दे रहे हैं, एक हत्यारे को हम फांसी दे रहे हैं, बड़े मजे की बात है। हत्यारे पर जुर्म ठहरा रहे हैं, कि समाज की तुमने हत्या की है इसलिये तुम जिम्मेवार हो और सजा हम उसे हत्या की दे रहे हैं कि तुम उन्हें मार डालते हैं। अब इनके मार डालने के लिए कौन जिम्मेवार होगा ? फर्क इतना ही है कि वह अकेला है और समाज के खिलाफ हत्या कर गया है और हम समाज के पक्ष में हत्या कर रहे हैं, इसलिए हम जज हैं, जिलाधीश हैं। हम जो हत्या कर रहे हैं वह हत्या नहीं है, वह सजा है। और उस आदमी ने भी हो सकता है सिर्फ सजा ही दी हो क्योंकि उस आदमी ने भी किसी को सिर्फ सजा दी हो जैसा हम उसको सजा दे रहे हैं। लेकिन जिस समाज में एक हत्या न्यायोचित है और एक हत्या न्यायोचित नहीं है उस समाज में हत्यायें कभी भी हो सकती हैं। सवाल सिर्फ यह है कि कब हम न्यायोचित हत्या ठहरा सकें किसी चीज को। वह न्यायोचित हो जाय, बस हत्या ठीक हो जायेगी। अब ऐसे हम कहते हैं कि आदमी को मारना पाप है लेकिन दो मुल्क लड़ने लगते हैं तो जो आदमी जितने ज्यादा आदमी मारा है उसको हम महावीर चक्र देंगे। अभी बड़े मजे की बात है, आदमी को मारना हर हालत में पाप नहीं है, अभी तो आदमी को मारना पुण्य है और कभी जो जितना ज्यादा आदमी मारेगा उतने जल्दी स्वर्ग जाने का हम उसका इन्तजाम किये हुए हैं। तो जब तक हमारी ऐसी दोहरी वृत्ति है कि जब हमारा मतलब होता है तब हत्या करना पुण्य होता है, जब हमारा मतलब नहीं होता तब हत्या करना पाप हो जाय तो फिर वियतनाम संभव होगा, हिन्दू, मुस्लिम दंगे संभव होंगे और इसमें जब भी हम ऐसा सोचेंगे कि कोई जिम्मेवार है तब वह हमारे मन की तरकीब है और जो तरकीब हम उपयोग कर रहे हैं वह तरकीब सारे लोग उपयोग कर रहे हैं। यह नहीं कि हमी उपयोग कर रहे हों। सारी दुनिया में हर आदमी यही तरकीब उपयोग कर रहा है तो उसमें क्रांति कहां से शुरू हो, कैसे शुरू हो ?

प्रश्न : मेरा अनुभव अलगता का अनुभव है। मैं जुड़ा हुआ हूं ऐसा मुझे महसूस नहीं होता।

उत्तर : अगर तुम्हारा अनुभव है कि दुनिया तुम्हें दुखी कर रही है तो तुम कैसे अनुभव करोगे। अगर तुम अलग ही हो तो बात खत्म हो गई लेकिन जब दुनिया तुम्हें दुखी कर रही है तब तो तुम जुड़े हुए हो, तब तो तुम मानते हो कि मुझे दुनिया दुख दे रही है, मुझे फलां आदमी दुख दे रहा है, मुझे फलां आदमी परेशान कर रहा है तब तुम जुड़े हुए हो लेकिन जब दुनिया को दुख देने का सवाल उठा तब तुम अलग हो गये। यह दोहरा मानदंड हुआ। यानी मैं कह रहा हूं कि अगर मैं यह कहूं कि मुझे कोई दुखी ही नहीं कर सकता, दुनिया कैसी भी हो तब मैं शायद दूसरी बात के कहने का हकदार हो जाऊं कि मैं किसी को दुख नहीं दे रहा हूं। ये दोनों बातें जुड़ी हैं, ये दोनों बातें इकट्टी हैं। इसमें तुम कहो कि आधे के लिये हम जुड़े रहेंगे और आधे के लिए हम जुड़े नहीं रहेंगे तो ऐसा नहीं चलेगा क्योंकि तुम जुड़े हो तों जुड़े हो, नहीं जुड़े हो तो नहीं जुड़े हो। अगर मैं यह कहता हूं कि तुम मुझे दुखी कर सकते हो तो मैं यह भी मान ले रहा हूं कि मैं भी तुम्हें दुखी कर सकता हूं। अगर मैं यह कह हता हूं कि इस दरवाजे से भीतर आना संभव है तो दूसरी बात अनिवार्य रूप हो गयी कि इस दरवाजे से बाहर जाना भी संभव है। लेकिन मैं यह कहता हूं कि ऐसा दरवाजा है जिससे सिर्फ भीतर ही आना संभव है, बाहर जाना संभव नहीं है तो ऐसा हर आदमी उपयोग कर रहा है इस दलील का, तो सवाल यह है कि अगर तुम दुनिया में पूछने जाओगे कि कौन है दुनिया तो तुम्हें एक-एक आदमी मिलेगा तुम्हारे बराबर ही, दुनिया कहीं भी नहीं मिलेगी। अगर तुम खोजने जाओगे कि पता लगा लें कि दुनिया कहां है तो मैं मिलूंगा, आप मिलेंगे, आप मिलेंगे और हम सब तुम्हारे बराबर आदमी होंगे। दुनिया तुम्हारी तरकीब है जिसमें अपने को अकेला कर लेते हो और सबकी भीड़ को जोड़ देते हो। वह भी कहां जुड़े हुए हैं, वे सब अकेले हैं इसलिए प्रत्येक आदमी को दुनिया बड़ी मालूम पड़ती है क्योंकि वह अपने को छोड़कर सबसे जोड़ लेता है। मैं कहता हूं कि इस कमरे में बहुत से लोग बैठे हुए हैं तो एक-एक आदमी देखने जाओगे तो अलग-अलग है। यह जो भीड़ हम जोड़ लेते हैं अपने लिए अलग कर लिया, बाकी सब को जोड़ दिया तो कठिनाई शुरू हो जायगी। जितना बड़ा हिस्सा मैं हूं इस दुनिया में उतना ही बड़ा हिस्सा कोई और भी है, उससे बडा छोटा कुछ भी नहीं और समाज और दुनिया और देश झूठे शब्द हैं, उनका कोई अस्तित्व नहीं है, अस्तित्व व्यक्ति का है लेकिन हम अपनी तरफ भली भांति, मेरे लिए तुम दुनिया हो न, लेकिन तुम कहते हो कि मैं बहुत छोटा आदमी हूं, और मैं जिसको भी पकड़ कर कहूंगा कि तुम मेरे लिए दुनिया हो वह भी कहेगा कि मैं बहुत छोटा आदमी हूं, दुनिया तो बहुत बड़ी है पर दुनिया को कहां पकड़ने जाओगे ? दुनिया कहीं भी नहीं है, व्यक्ति ही है। और अगर तुम्हें यह बात ख्याल में आ जाय कि व्यक्ति का जोड़ जैसी कोई चीज नहीं है, व्यक्ति है और उन व्यक्तियों के अंतर्संबंध और उन व्यक्तियों को एक दूसरे को प्रभावित करने वाली लहरें हैं और वे व्यक्ति भीतर से एक दूसरे से जुड़े हुए संयुक्त हैं। ऐसा तुम अगर एहसास करोगे तब तुम अपने को न तो असहाय समझोगे, न तो इम्पोटेंट समझोगे। न तुम यह समझोगे कि अब मैं कुछ भी नहीं कर सकता क्योंकि तब तुम यह समझोगे कि मेरे ही बराबर तो सारे लोग हैं। जितना वे कर सकते हैं उतना मैं कर सकता हूं लेकिन तुम बाकी सबको जोड़ लेते हो और अपने को अलग कर देते हो तब तुम मुश्किल में पड़ जाते हो। जोड़ जैसी चीज कहीं है ही नहीं।

यह गलत है कि तुम अपने को तो व्यक्ति की तरह देखते हो और बाकी दुनिया को व्यक्ति की तरह नहीं देखते हो तो गलती हो जायगी। यह मैं कह रहा हूं कि दोहरे हमारे स्टैंडर्ड हैं हर चीज में। जो हम अपने लिए सोचते हैं वह हम सब के लिए नहीं सोच पाते हैं। सब तकलीफ शुरू हो जाती है। अगर मुझे कोई गाली दे तो मैं जानता हूं कि क्रोध उठता है लेकिन किसी दूसरे को कोई गाली दे रहा हो तो मैं समझा सकता हूं कि

क्रोध बहुत बुरी बीज है। वहां मैं बिल्कुल निर्दय हो जाऊंगा। वहाँ मैं व्यक्ति को अनुभव नहीं करूंगा। उसकी तकलीफ, उसकी कमजोरी, उसकी परेशानी, उसकी मुश्किल, उसका अस्तित्व। अगर मैं वैसा अनुभव करूँ तो एक तो जिंदगी के प्रति बहुत करुणा अनुभव होगी क्योंकि जितना असहाय तुम हो उतना असहाय कोई और भी है और दूसरी तरफ तो सारे लोग असहाय मालूम पड़ेंगे। दूसरी तरफ यह बात यह मालूम पड़ेगा कि जितनी सामर्थ्य उनकी थी उतनी सामर्थ्य मेरी थी और सबसे बड़ी बात विचारणीय जो है वह यह है कि तब तो कुछ कर सकोगे। अभी तुम जो रुख ले रहे हो वह तुम्हें निष्क्रिय कर देगा और कुछ भी न कर सकोगे। उससे तुम सिर्फ निर्वीर्य होकर गिर पड़ोगे और कुछ भी नहीं कर सकोगे क्योंकि तुमने एक झूठी दुनिया का जोड़ा खड़ा कर लिया है जो हिमालय मालूम पड़ रहा है और तुम तो एक टुकड़े रह गये छोटे। अगर तुम व्यक्ति की तरह दुनिया को देख पाओ तो फिर बहुत करने की संभावना के द्वार खुल जाते हैं और सबसे बड़ा द्वार जो खुलता है वह यह कि अगर मुझे कहीं कुछ गलत दिखायी पड़ रहा है तो मैं उसमें कहाँ तक भागीदार हूं इसका मुझे एहसास होना चाहिए। इस तरह के आदमी को ही धार्मिक कहा जा सकता है जिसको यह ख्याल हो रहा है कि दुनिया में जो खराबी है, बीमारी है, दुख है, पीड़ा है, चिंता है उसमें कहां-कहां जिम्मेवार हूं, मैं कितनी चिंता पैदा करवा रहा हूं, मैं कितने दुख पैदा करवा रहा हूं जिनसे फल लगेंगे। अगर मैं विराध में हूं और मुझे लगता है कि वियतनाम में बुरा हो रहा है तो फिर मुझे सोचना पड़ेगा कि मैं कितनी दूर तक वियतनाम में सहयोगी बन रहा हूं। वह हवा पैदा कर रहा हूं जहां वियतनाम पैदा हो सके और कम से कम उतना तो हाथ को खींचूं, उतने दूर तक तो मेरा सहयोग शुरू हो जाय, और जब कोई व्यक्ति दूर तक अपना असहयोग कर ले जीवन की स्थिति से तो उसको बड़ी ऊर्जा, बड़ी शक्ति उपलब्ध होती है क्योंकि वह जीवन के प्राणों से बहुत तादात्म्य, उसका अनुभव उससे शुरू हो जाता है तब उसके हाथ से बड़े काम घटित हो सकते हैं क्योंकि बहुत गहरे में तब वह व्यक्ति रहा ही नहीं। इसलिए समग्र के साथ एक भीतरी तादात्म्य उत्पन्न कर लिया था।

असल में कठिनाई यह है कि अपने को भी तुम वैसा ही नहीं जानते हो। जो मैं कह रहा हूं वह यह कि हम अपने लिए भेद कर लेते हैं। कुल इतना कह रहा हूं कि जब मैं नींद की बात सोचने चलता हूं तो तुम्हारे हाथ में दूसरे तराजू का उपयोग करता हूं। जब मैं किसी आदमी को कहने जाता हूं कि तुम जिम्मेवार हो इस सारे उपद्रव के लिए तब मैं दूसरे तराजू का उपयोग करता हूं और जब मैं अपने को तौलने जाता हूं तो कारण है।

प्रश्न : मैं भाषा से अपने को देख रहा हूं।

उत्तर : यह तो ठीक है। भाषा के कारण कठिनाइयां पैदा होती हैं लेकिन भाषा के द्वारा ही वे कठिनाइयां हल की जा सकती हैं। अगर भाषा के द्वारा तुमने यह समझा है कि दुनिया इकट्ठी है और मैं अकेला हूं तो भाषा के द्वारा यह समझा जा सकता है जो मैं कह रहा हूं। असल में भाषा जो भी भूल पैदा करती है वह भाषा से ही दूर की जा सकती है। भाषा में उनके दूर करने का उपाय है और जो भूल भाषा ने पैदा ही नहीं की है उनका तो भाषा से कोई संबंध ही नहीं है। अगर वैसी कोई भूल है तो वह तो मौन से ही दूर हो सकती है, भाषा से दूर कभी नहीं हो सकती। यानी भाषा का कोई कसूर ही नहीं है। भाषा से जितनी भूलें पैदा हुई वह तो हल की जा सकती हैं। जैसे भाषा ने तुम्हें एक नाम दे दिया है। नाम के कारण तुम्हें एहसास होने लगा है कि तुम अलग हो, क्योंकि तुम प्रताप हो, दूसरा आदमी प्रताप नहीं है। तो भाषा ने हमें एक अलग होने का बोध दे दिया है। इस बोध को अगर तुम पकड़ के जियोगे तो तुम एहसास करते रहोगे, तुम अलग हो, तुम अलग हो। लेकिन अलग होना और इकट्ठा होना भी भाषा की ही बात है। अगर तुम इस अलग होने पर थोड़ा सोचविचार कर सको, सब सोच विचार भाषा में है, तो तुम यह भी अनुभव कर सकते हो कि यह अलग होना

सिर्फ काम चलाऊ है, उपयोगी है, सत्य नहीं है। उपयोगी जरूर है लेकिन सत्य नहीं है और उपयोगिता को सत्य नहीं बनाना चाहिए। अब यह ठीक है कि हिन्दुस्तान की एक सीमा हो और यह उपयोगी हो सकती है और पाकिस्तान की एक सीमा हो, लेकिन यह सीमा सत्य नहीं है। और यह सीमायें दो तरह का काम करती हैं। इन सीमाओं को या तो तुम ऐसा समझ सकते हो, वह सीमा है जो हिन्दुस्तान और पाकिस्तान को अलग करती हैं। तो तुम ऐसा भी समझ सकते हो कि सीमा वह है जो हिन्दुस्तान और पाकिस्तान को जोड़ती है। सीमा कुछ भी नहीं कहती कि आप मेरे साथ क्या उपयोग करो। मेरे बगल के मकान की दीवाल है मेरे और बगल के पड़ोसी में। इसे हम ऐसा भी ले सकते हैं कि यह दीवाल मुझे और मेरे पड़ोसी को अलग करती है और हम ऐसा भी ले सकते हैं कि मेरे और पड़ोसी के बीच कामन एलीमेंट यही दीवाल है जो हमें जोड़ती है। आखिर इसे कैसा लेते हो यह तुम पर निर्भर है। दीवाल जो है वह पड़ोसी से मुझे अलग करने वाली भी हो सकती है। वह मेरे देखने का ढंग है और वही चीज जोड़ने वाली भी हो सकती है क्योंकि पड़ोसी और मेरे बीच वह कामन है। एक हिस्सा पड़ोसी के पास है उस तरफ वाला हिस्सा, इस तरफ वाला मेरे पास है। उस दीवाल से हम दोनों मिलते भी हैं, उस दीवाल से हम दोनों अलग भी हो सकते हैं और दीवाल आपसे कुछ भी नहीं कहती कि आप क्या करो। शब्दों की सीमायें भी जोड़ती हैं, तोड़ भी देती हैं। एक्सप्रेशन जो है वह उपयोगी भी है, घातक भी हो सकता है। जैसे कि हम कहते हैं कि मनुष्यता को प्रेम करो। अभी यह बड़ा खतरनाक मामला है। क्योंकि प्रेम हमेशा मनुष्य से हो सकता है। मनुष्यता से कैसे प्रेम करियेगा? मनुष्यता जैसी चीज तो कहीं है भी नहीं जिसको गले लगा सको, जिसको हृदय से लगा सको, जिसको पास बिठा सको, जिसके पैर दबा सको। मनुष्यता कहीं भी नहीं मिलेगी। अब मैं यह कह रहा हूं कि मनुष्यता एक एक्सप्रेशन है, एक ह्युमिनिटी है। मनुष्य तो सत्य है और मनुष्यता एक बिल्कुल ही काल्पनिक बात है लेकिन जब हम कहते हैं कि मनुष्यता से प्रेम करो तब हम यह कह रहे हैं कि ऐसा एक भी मनुष्य छोड़ो जो तुम्हारे प्रेम का पात्र न रह जाये। इसका हम यह मतलब भी ले सकते हैं कि मनुष्यता से प्रेम करो का मतलब यह है कि अब एक भी मनुष्य ऐसा नहीं है जो प्रेम करने योग्य न रहा। मनुष्य होना ही प्रेम करने की पर्याप्त व्याख्या हो गयी यानी उसकी अपेक्षा दूसरी मत करना और, कि वह अच्छा आदमी है, चोर न हो ईमानदार हो, व्यभिचारी न हो, आश्वासन का पक्का हो। अब अपेक्षा मत करना। मनुष्य होना काफी शर्त हो गयी, वह बेईमान हो, ईमानदार हो अब यह महत्वपूर्ण नहीं क्योंकि मनुष्य होना काफी है। मनुष्यता से प्रेम करो इसका यह मतलब है एक्सप्रेशन का यह उपभोग भी हो सकता है कि एक आदमी कहे कि हम मनुष्य को तो प्रेम ही न करेंगे, हम तो मनुष्यता को प्रेम करेंगे। और ऐसे लोग हैं जो मनुष्यता को प्रेम करने की बात भी कर रहे हैं ताकि मनुष्य से प्रेम करने से बच जायें। एक एक मनुष्य को प्रेम करने से बच जायें। वह तो कहते हैं कि हम मनुष्यता को प्रेम करेंगे, हम तो परमात्मा को प्रेम कर सकते हैं। अब बड़े मजे की बात है कि मनुष्य से बचा सकता है यह मनुष्यता से प्रेम क्योंकि मैं तब कहूंगा कि आप तो सिर्फ मनुष्य हैं। मनुष्यता तो नहीं हैं। मैं तो मनुष्यता से प्रेम के लिए जी रहा हूं। तो मैं पत्नी को छोड़ सकता हूं, बच्चे को छोड़ सकता हूं क्योंकि मैं तो मनुष्यता के लिए जिऊँगा। मैं सारे दायित्व छोड़ सकता हूं क्योंकि मैं कहूंगा कि सब मुझे बांधते हैं। मुझे तो मनुष्यता से प्रेम करना है, विराट से प्रेम करना है। अब विराट को प्रेम करने में हो सकता है कि मैं जो प्रेम कर रहा था उसको भी तोड़ डालूं। लेकिन हम क्या उपयोग करते हैं यह हम पर निर्भर है और सभी चीजें दोहरी हैं, उनके दोहरे उपयोग हो सकते हैं। तो ठीक है। शब्द की अपनी तकलीफ है लेकिन अपनी सुविधा भी है उसकी। जो मैं कह रहा हूं वह दूसरी बात कह रहा हूं। मैं तुमसे यह कह रहा हूं कि हमें यह बहुत कठिन मालूम पड़ता है असल में कि

सड़क पर एक आदमी भीख मांग रहा है तो मैं उसमें जिम्मेवार हूं क्योंकि जिम्मेवारी समझ में नहीं आती मुझे। कहीं हमारा ताल मेल नहीं है। न मैं उस आदमी को जानता हूं। हो सकता है लदन तो मैं कभी नहीं गया, लंदन में जो भीख मांग रहा है उससे मेरा क्या लेना देना है। और पेरिस में जिस स्त्री को वेश्या हो जाना है उससे मेरा क्या संबंध है। मैं तो कभी वहां गया भी नहीं। मैंने तो कभी उसकी शक्ल भी नहीं देखी। मुझे कभी पता भी नहीं चलेगा कि वह कब पैदा हुई और कब मर गयी। तो मुझे कैसे आप जिम्मेवार ठहराते हैं कि पेरिस में एक स्त्री वेश्या हो गयी तो मैं उसके लिए जिम्मेवार हूं। नहीं, इस जिम्मेवारी का मतलब और है। मतलब यह है कि जिस ढंग से जी रहा हूं, मैं जिस ढंग की मान्यताओं में जी रहा हूं, मैं जिस ढंग का आदमी हूं, मेरे जिस ढंग का सोच विचार है, उस सारे सोच विचार, उस ढंग के आदमी होने, उस ढंग के जीने, उस तरह की धारणा उस तरह की फिलासफी वेश्याओं को पैदा करती ही है। वह पेरिस में पैदा करती है कि लंदन में, कि बंबई में यह सवाल नहीं है। मेरे सोचने का ढग, मेरे जीने का ढंग क्या वेश्याओं को पैदा करने के लिए उर्वर भूमि बनता है? यह सवाल है। और अगर बनता है तो सारी दुनिया में कभी भी कहीं वेश्या पैदा हुई है तो जिम्मेवार हूं। लेकिन इसे खोजना मुश्किल होगा। आप कहेंगे कि मैं कभी भी किसी वेश्या के पास नहीं गया, मैंने कभी किसी स्त्री को रुपये देकर शरीर खरीदने के लिए मजबूर नहीं किया तो मुझे जिम्मेवार ठहराते हैं। लेकिन जिम्मेवारी बहुत गहरी है। जिसको हम विवाह कहते हैं वह भी पैसा देकर शरीर को बेचने का इन्तजाम है। हो सकता है एक आदमी कभी किसी वेश्या के पास न गया हो। और न वेश्या के संबंध में उसने सोचा है लेकिन जब तक विवाह भी पैसे के ऊपर आधारित होता है तब तक जिसे हम पत्नी कह रहे हैं वह जीवन भर के लिए खरीदी गयी वेश्या से ज्यादा नहीं हो सकती है। लेकिन उसे पहचानने में कठिनाई होती है क्योंकि हम कहेंगे जीवन भर की वेश्या? कैसा शब्द उपयोग करते हैं? क्योंकि हमने उसे बहुत अच्छे लिबास में रखा हुआ है, बाद में छिपा कर। एक आदमी है जोकि जिन्दगी भर के लिए स्त्री खरीद नहीं सकता है। हजार कारण हो सकते हैं। एक आदमी जिसे सुविधा है कि पांच सौ स्त्रियां खरीद सकता है वह वेश्या के पास क्यों जायगा? हैदराबाद का निजाम क्यों जाय वेश्या के पास? वह पांच लो स्त्रियाँ खरीद सकता है इस जमाने में। तो एक आदमी पांच सौ पत्नियों का पति हो सकता है। निजाम हैदराबाद को कोई कहने नहीं जायेगा कि यह क्या कर रहे हो? तुम एक ऐसी दुनिया बना रहे हो जिसमें वेश्या पैदा होगी। जो आदमी पांच सौ स्त्रियों को खरीदकर घर में नहीं रख सकता वह भी पांच सौ स्त्रियों को चाह तो सकता है और अगर वह एक स्त्री को इस भांति लाता है कि वह खरीदी हुई हो तो वह उस समाज को पैदा कर रहा है जिसमें वेश्या पैदा होगी। अगर मैंने विवाह किया हुआ है और एक स्त्री को अपने साथ रखे हुए हूं और आज मेरा और उसका सारा प्रेम समाप्त हो गया है, फिर भी मैं उसे अपने साथ जीने के लिये मजबूर कर रहा हूं और उसके साथ जी रहा हूं तो मैं ऐसी दुनिया बना रहा हूं जिसमे वेश्या पैदा होगी क्योंकि मेरा और मेरी पत्नी का सबध अब वेश्या का संबध हो गया है। और तो कोई सबंध नहीं रहा या है क्योकि प्रेम जहाँ समाप्त हो गया है वहाँ सब संबध पैसे के रह जाते हैं। सिर्फ प्रेम एक संबंध है जो बिना पैसे के हो सकता है, बाकी सब संबंध पैसे के हैं। हो सकता है मेरी पत्नी मेरे साथ रह रही हो क्योंकि अगर वह चली जाय तो कहीं भीख मांगेगी, क्या करेगी क्या नहीं करेगी। अगर भीख मांगने के डर से वह मेरे पास रह रही है तो संबंध पैसे का हो गया। वही तो वेश्या बेचारी किसी आदमी को बेच रही हैं क्योंकि उसको भीख मांगनी पड़ेगी अगर अपने शरीर को न बेचे लेकिन वह चूंकि रोज अलग-अलग आदमी को बेच रही है इसलिए दिखाई पड़ रही है और एक स्त्री ने एक आदमी को जिन्दगी भर के लिए बेच दिया है इसलिए दिखाई नहीं पड़ रहा है।

ये सारे इम्प्लीकेशंस देखने की बात है कि हम

जिस ढंग से जी रहे हैं, जिस ढंग की बातों को हम वारणा बनाये हुए हैं। अब तुम्हारी बहन की तुम्हें अगर शादी करनी हो, तुम्हारे बेटे की शादी करनी हो, तुम्हें अपनी बेटी की शादी करनी हो तो तुम उसके लिए प्रेम का मौका दे रहे हो या लड़का खोज रहे हो। अगर तुम लड़का खोज रहे हो तो तुम वह दुनिया बना रहे हो जिसमें कि वेश्या पैदा होगी। यानी मैं यह कह रहा हूं कि लंदन की वेश्या और पेरिस की वेश्या से कुछ लेना देना नहीं है लेकिन में जिस ढग से जिऊंगा वह कैसी दुनिया को बनाने में सहयोगी होता है मेरा ढंग। उधर रहने का ढग किस दुनिया को बनाता है ? अपनी सीमा मे ही एक छोटी दुनिया बनायेगी लेकिन उसकी धारायें तो फैलती रहेंगी। हम कैसे जी रहे हैं यह न केवल आज की दुनिया को प्रभावित करेगा, यह प्रभाव अनतकालीन होगा। क्योंकि हम तो मिट जायेंगे लेकिन हम जो लहरें छोड़ रहे हैं वह चलती चली जाती हैं।

समझ लें एक आदमी मकान घर बार छोड़ कर सड़क पर नंगा भिखारी हो जाता है तो क्या तुम उसे सम्मान देते हो और कहते हो कि त्याग कर बहुत बड़ा काम किया तो तुम इस दुनिया में दुख को बढ़ाने में सहयोगी बनोगे क्योंकि जब वह आदमी घर में था, शांति से था, सुख से था तब तुम उसे सम्मान देने नहीं गये थे। जब वह धूप में खड़ा हो गया और भूखा खड़ा हो गया और सड़क पर कांटों में लेट गया और आई, ठण्डी आई और धूप आई और वह वहीं पड़ा रहा तब तुम उसे सन्यास देने गये, तो तुम एक दुनिया को बनाने में सहयोगी बन रहे हो जिसमें दुखी आदमी को, दुख को वरण करने वाले आदमी को आदर मिलेगा, जिसमें सुखी आदमी को सुख के वरण करने वाले को, सुख की खोज करने वाले को आदर नहीं मिलेगा। तो तुम सहयोगी बन रहे हो। यानी जो मैं कह रहा हूं वह यह कह रहा हूं कि हमारा सहयोग गहरा है। तुम्हारे इशारे तक में हमारा सहयोग है। जो दुनिया बन रही है उसमें हमारा इशारा भी है। हम सड़क पर एक आदमी को नमस्कार कर रहे हैं, वह भी है।

मैं जिस कालेज में था, उसमें एक चपरासी था। उसका उम्र होगी कोई साठ साल की वह बूढ़ा आदमी था और उतनी उम्र का कोई प्रोफेसर नहीं था। लेकिन मैंने कभी किसी को भी उस बूढ़े से सम्मान से बोलते नहीं देखा। एक सामान्यतः आदमी होने का जितना सम्मान होना चाहिए उतना भी नहीं। उसके आदमी होने की हैसियत ही नहीं। उसको किसी भी तरह बुलाया जा सकता है। मैं जब पहली दफा वहां गया तो मैं बहुत हैरान हुआ। मैंने चार छः दिन देखा और देखा और कहा, यह क्या पागलपन है। इतना बूढ़ा आदमी है कि हम सबके पिता की उम्र का होगा। उससे इस तरह का व्यवहार ? तो उन्होंने कहा, वह चपरासी है। मैंने कहा, चपरासी उसका काम है, उसका होना थोड़े ही। कोई आदमी चपरासी थोड़े ही होता है। वह छः घंटे चपरासी का काम करता है और एक आदमी का काम है कि वह छः घन्टे मजिस्ट्रेट का काम करता है। लेकिन न तो कोई आदमी मजिस्ट्रेट हो सकता है, न कोई आदमी चपरासी हो सकता है। छः घन्टे के दफ्तर के बाद दोनों आदमी रह जाते हैं। एक आदमी चपरासी है छः घन्टे दफ्तर में काम करके। जब दफ्तर के बाहर जाता है तो आदमी है। चपरासी तो उसका एक काम था, इसका बींग तो नहीं हो गया। तो मैंने उनसे कहा, ठीक है, तुम चपरासी के साथ एक ऐसा व्यवहार कर रहे हो। दफ्तर के बाहर तुमने कभी इसे नमस्कार किया है ? उन्होंने कहा, वह चपरासी है आप कैसी बात करते हैं। दफ्तर के बाहर भी कोई सवाल नहीं है। अब यह एक ऐसी दुनिया बनाने की कोशिश कर रहे हैं जहां आदमीयत से नहीं पहचाना जायेगा। जहां आदमी क्या काम करता है इससे पहचाना जायेगा। तो फिर ध्यान रहे, भंगी को कभी सम्मान नहीं मिल सकता। घूम फिर कर कई दफा बातें किया तो उन्होंने कहा कि नहीं, भंगी को, चमार, को, हरिजन को, सबको बराबर मौका होना चाहिए। वर्ण व्यवस्था ठीक नहीं है। जिस आदमी ने मुझसे यह कहा कि वर्ण व्यवस्था ठीक नहीं है वह वही आदमी है जो दो दिन पहले मुझसे कहता है यह आदमी चपरासी है, इसे हम ऐसे ही

बोलेंगे। तो फर्क क्या है वर्ण व्यवस्था ठीक और इसके चपरासी होने में। मामला क्या है, कठिनाई क्या है? वह जो बेचारा भंगी है इसीलिए तो उसका फंकशन, उसका बींग बना दिया है हमने-यानी पाखाना साफ करना उसका काम नहीं रहा, उसका अस्तित्व उसकी आत्मा हो गयी। पाखाना साफ करना ही उसकी आत्मा है इसलिए छूने योग्य नहीं रहा वह। अगर सिर्फ काम होता तो ६ घण्टा बाद छूटने पर छः घटे तो छूने योग्य होता। काम तो खत्म हो जाता है लेकिन आत्मा तो खत्म नहीं होती। तो हमने काम को उसकी आत्मा बना दिया है, वह चपरासी बना रहे कोई उसमें फर्क नहीं है।

रास्ते पर जब तुम एक मिनिस्टर को नमस्कार करते हो तो तुम वर्ण व्यवस्था पैदा कर रहे हो लेकिन वह ख्याल में नहीं होता, क्योंकि भंगी को नमस्कार नहीं करते हो, एक मिनिस्टर को नमस्कार करते हो तो वर्ण व्यवस्था पैदा कर रहे हो। फिर वह वर्ण व्यवस्था जो कुछ करेगी उसके जिम्मेदार तुम और मैं रहेंगे। क्योंकि हम जो व्यवहार कर रहे हैं उससे वह पैदा होती है। यानी हम जो भी कर रहे हैं उससे हमें कोई समाज व्यवस्था चारों तरफ उसकी धारा पैदा किये चले जा रहे हैं और वह धाराएं पैदा होंगी।

अभी एक सज्जन आये ६ महीने पहिले। उनका एक लड़का था वह चल बसा। बहुत दुखी थे, पढ़े लिखे आदमी हैं, कोई डेढ़ हजार रुपये की तन्खाह पर हैं। मैंने उनसे कहा, घबराइए मत, चार छ महीने में सब ठीक हो जायगा। मैंने तो सिर्फ ऐसे ही कहा था कि मन हल्का हो जायगा। लेकिन अभी मैं आया तो दो दिन पहले वे आये थे। और कहे कि आपकी कृपा से सब ठीक हो गया है। मैंने कहा, क्या हुआ। पड़ोस में किसी ने अपना बच्चा उनको दे दिया। उस बच्चे को लेकर वे आये थे। तो उस बच्चे को लेकर आये थे कि बच्चा हमें दे दिया। बिल्कुल अच्छे खून का है, खत्री खून का है। अच्छे खानदान का लड़का है और अपनी ही जाती का है और बड़े भले लोग थे कि उन्होंने दे दिये। मैंने उनसे कहा कि खून भी खत्री होता है? कोई जांच करवाकर बता सकियेगा कि यह खून खत्री का है। इस लड़के का खून निकलवाइ, आपका खून निकलवाकर कोई दुनिया में नहीं बता सकता है कि यह खून किसका है। खून कहीं खत्री का होता है? अब यह जो आदमी कह रहा है उसके कहने से एक दुनिया निर्मित होगी, उस दुनिया में वर्ण व्यवस्था होने वाली है, उससे नहीं बचा जा सकता है। अब यह आदमी कह रहा है कि वह बड़े अच्छे लोग हैं। उसकी पत्नी जो छः महीने पहले रोती थी, पाकर बड़ी प्रसन्न है उस बच्चे को पाकर। लेकिन उसने पहले बच्चे की बात ही नहीं की। वह बहुत प्रसन्न है और वह दोनों लोग कह रहे थे कि बहुत अच्छे लोग हैं। वे तो अच्छे लोग हैं। वे तो अच्छे लोग हैं जिन्होंने बच्चा दे दिया, आप कैसे लोग हैं जिन्होंने बच्चा ले लिया। जिन्होंने दे दिया वे अच्छे लोग हैं जिन्होंने बच्चा ले लिया। कुल कारण है कि वह गरीब घर का बच्चा है। चार छः बच्चे हैं उनके, पाल नहीं सकते हैं तो उसको दे दिया है। मैंने कहा अगर इस बच्चे से थोड़ा भी प्रेम है तो तुम इसे उनसे न तोड़ते। तुम जो प्रेम दिखला रहे हो इस बच्चे से वह जरा भी नहीं है और अगर तुम्हें थोड़ा भी प्रेम इससे था तो तुम इसे उनके पास पलने दो। इसकी व्यवस्था करो जो तुम व्यस्था अभी करोगे। इस बच्चे से तो कोई प्रेम ही नहीं है। बल्कि उस बच्चे की नयी मां ने कहा, कि इसकी मां इसे देखने जाना चाहती है तो तो हमने तो उसे मना किया है। इस तरह तो मोह बना रहेगा, वह टूटेगा कैसे और मैं तो अपने पति को कहीं भी जल्दी यहां से ट्रांसफर करा लूं ताकि यह माह न रह जाय। और वह लोग बड़े अच्छे लोग हैं। कह दिया तो वह लोग नहीं आ रहे हैं। अब ऊपर से देखने में इसमें कुछ बुराई न मालूम पड़ेगी, लेकिन ये लोग एक तरह की दुनिया बनायेंगे जो दुनिया बड़ी खतरनाक होगी। इसका बर्तन जो है वह एक दुनिया बनायेगा जो बहुत खतरनाक होगी। उसमें इनका जिम्मा होगा। मैंने इनसे पूछा कि अगर यह बच्चा मर जाय, एक दम वे कहने लगे कि आप ऐसी अपशकुन की बात मत करिये। अगर यह बच्चा मर जाय तो आप तो बहुत दुखी होंगे।

उन्होंने कहा कि बहुत दुख होगा। मैंने कहा कि यह बच्चा अगर उसी के पास रहता और मर जाता तो भी यही बच्चा मरता। आपको कोई तकलीफ होती? उन्होंने कहा, इसमें क्या तकलीफ होती, हम से कोई संबंध नहीं था। इसका मतलब क्या होता है? इसका मतलब होता है कि जब एक अमरीकी वियतनामी को गोली मारता है तो उसका कोई मतलब नहीं है उससे। वह जो मर रहा है तो मर जाय, उससे संबंध क्या है अमरीकी युवक का एक वियतनामी नाम के युवक से क्या संबंध है, क्या लेना देना है? जैसे कि एक हिन्दुस्तानी एक पाकिस्तानी को छाती में छुरा भोंकता है तो हमें क्या मतलब है? लेकिन अभी बीस साल पहले मतलब था हमें और अगर करांची पर बम्बार्डमेंट होता तो हम दुखी होते उतना ही जितना दिल्ली पर होता। लेकिन अब अगर करांची पर बम्बार्डमेंट हो तो हम यहाँ बंबई में खुश होंगे। मैं यह क्या कह रहा कि यह जो इस मां और इस बाप ने कहा वह इसका फैलाव है। हमारा यह बर्तन यह सारा का सारा फैलाव है। तब हमको ऐसा नहीं लगता। करांची में कोई मर रहा है तो वह पाकिस्तानी मर रहा है, उसको मरना ही चाहिये। हमसे उसका क्या लेना देना है, हमारा देश अलग, उसका देश अलग। पड़ोसी का लड़का मरे तो मरे, हमें क्या मतलब? हमारे ये बर्तन हमें खतरे में ले जायेंगे।

●●●

पत्र प्रेरणा

(कु० भारती—लन्दन को लिखा गया एक पत्र)

प्यारी भारती,

प्रेम। तेरा पत्र पाकर बहुत आनंदित हूं।

जीवन नये-नये अनुभवों का नाम है।

नित जो नये का अनुभव करने में समर्थ है, वही जीवित है।

इसलिए, परदेश को प्रेम से ले।

नये को सीख।

अपरिचित को परिचित बना।

अज्ञात को जान, पहिचान।

निश्चय ही इसमें तुझे बदलना होगा।

पुरानी आदतें टूटेंगी।

तो उन्हें टूटने दे।

और स्वयं की बदलावट से भयभीत न हो।

परिवर्तन सदा शुभ है।

जड़ता सदा अशुभ।

और सदा ही अतीत की ओर देखते रहना (खतरनाक)

क्योंकि, उससे भविष्य के सृजन में बाधा पड़ती है।

पीछे नहीं, जीवन है आगे।

इसलिए आगे देख।

और आगे, और आगे।

स्मृतियों में नहीं, सपनों में जी।

और जो भी वहां है उसे निंदा से मत देख।

वह दृष्टि गलत है।

जहां भी रहे, वहां सदा शुभ को, सुन्दर को खोज।
और सब जगह, सब लोगों में सुन्दर का वास है।
बस उसे देखने वाली आंख भर चाहिए।
और ध्यान रख कि जो हम देखते हैं, वही हम हो जाते हैं।
शुभ तो शुभ।
अशुभ तो अशुभ।
इसलिए, बुरे को मत देख।
वह भारतीय आदत को छोड़ तो अच्छा!
मेरी दृष्टि में तो बुरी दृष्टि के सिवाय
और कुछ भी बुरा नहीं है।
वहां सबको मेरे प्रणाम कहना।

रजनीश के प्रणाम
३०-५-७०

(वी. एन. शाह बम्बई, को लिखा गया एक पत्र)

मेरे प्रिय,
प्रेम। आपका पत्र पाकर आनंदित हूं।
और यह जानकर भी कि आपकी २१ दिन की अंतर्यात्रा सुखद रही।
लेकिन यह तो केवल प्रारंभ ही है।
अभी तो केवल सागर के तट पर ही पहुंचे हैं।
सागर में डूबना भी है।
सागर में खोना भी है।
अंततः तो सागर से एक ही होना है।
जहां खोजने वाला भी न बचे, खोजते हैं जिसे वह भी न बचे, खोज भी न बचे—
उसके पहले सब पड़ाव है, उसके पहले मुकाम कोई भी नहीं है।
लेकिन सागर तट तक पहुंचना भी थोड़ा नहीं है।
वह भी बड़ा साहस है।
क्योंकि, उससे ही तो स्वयं के मिटने की कहानी शुरू होती है।
इसलिए, आपको अहंकार के स्वप्नों ने भी पीड़ित किया।
क्योंकि अहंकार का दिया भी बुझने के पहले भभककर जलना चाहता है।
उस पर भी दया करना।
मरते पर कौन दया नहीं करता?
और भूलकर भी उससे लड़ना मत।
क्योंकि, लड़े तो फिर उसका मरना कठिन है।
शेष पोरबंदर में।
वहां सबको प्रणाम।

रजनीश के प्रणाम
९-६-७

With Best Compliments

From

•

KANI & Co.

Paper & Boards Merchant

Stockists : Bellarpur & J. K. Paper

•

9, New Marine Lines,
Opp. : Liberty Cinema, Bombay-20

Tele.-291570

With Best Compliments From

ALPHA (IMPEX) CORPORATION

SOLE SELLING AGENTS FOR

R. Guilleminot Boespflug &
CIE (France)
For Photo Products

Frithjof Tutzschke (Germany)
For Damping Roller Cover (Hoses)

Vieille—Montagne (Belgium)
For Lithographic Zinc Plates

Herbst & Illig (Germany)
For Kohinoor Glass Halftone And all Sorts
of Contact Screens

Norprint Limited (Autotype)
For Silk Screen Films

Alpha House (Behind Handloom House)

19, Police Court Lane, Fort, Bombay-1

Grams-Lithogull *Phone-266546-269226*

With Best Compliments

From

●

SHREYAS AGENCIES

81, Uday Vihar, Ranade Road, Bombay-28

Telephone : 458426

●

Distributors

Coates of India Ltd.

&

Ganges Printing Ink Factory Ltd.

With Best Compliments

From

Bharat Folding Box Manufacturing Co.

Printers Button Cards & Carton Specialists

Bombay Suryodaya Mills Compound No. 21

Tardeo Road,

Bombay-34

Telephone No. 372802
373745

With Best Compliments

From

M/s. Good Hope Co.

Dealer in :—*Graphic Materials & Chemicals*

Address : 214/16, Dr. Cowasji Hormushji Street,
Bombay : 2 BR.

Tel.-315299
C/o-312232

मानसेवी संपादक : अरविन्द कुमार । सह-संपादक : आलोक कुमार पाण्डे । व्यवस्थापक : श्री आर. आर. मिश्र।

स्वत्वाधिकारी प्रकाशक : अरविन्द कुमार, ७९० राइटटाउन, जबलपुर ।

सौजन्य संपादक : कनु शेठ, B. Sc. (Ag.)

मुद्रण : श्रीपाल प्रिन्टर्स, १९१, कोतवाली वार्ड, जबलपुर से मानसेवी संपादक अरविन्द कुमार के लिये मुद्रित ।

वर्ष : २॥ १ एवं १६ मई ७१ ॥ अंक : २१-२२ ॥ मूल्य : १.००
॥ वार्षिक मूल्य : १२.०० ॥

"जिन खोजा तिन पाइयाँ, गहरे पानी पैठ"

—भगवान श्री रजनीश

– उपासना में डूबे प्रेमी –

स्वामी गोविन्द सिद्धार्थ (श्री जे० डी० लश्करी),
ए टु जेड इन्डस्ट्रियल स्टेट, लोवर परेल,
बंबई–१३ (फोन : ३७०६९२)